वैज्ञानिक चिंतन की आवाज़

TARKSHEEL SOCIETY PUNJAB (REGD.)
BE RATIONALIST

तर्कशील पथ

TARKSHEEL PATH

जनवरी-फरवरी 2026



" नया वर्ष, नया संघर्ष, नया आह्वान,
मिटाएँ ग़म, लाएँ नव-जागरण।
परंपरा की जंजीरें तोड़ो,जन-जन का हो उत्थान,
हर बाधा को मिटाकर, करें नया जग महान। "

30/-

नया वर्ष जीवन को नए दृष्टिकोण से गढ़ने की चुनौती देता है। -जॉर्ज बर्नार्ड शॉ

नववर्ष



स्वागत ! जीवन के नवल वर्ष
आओ, नूतन-निर्माण लिये,
इस महा जागरण के युग में
जाग्रत जीवन अभिमान लिये;

दीनों दुखियों का त्राण लिये
मानवता का कल्याण लिये,
स्वागत ! नवयुग के नवल वर्ष !
तुम आओ स्वर्ण-विहान लिये।

संसार क्षितिज पर महाक्रान्ति
की ज्वालाओं के गान लिये,
मेरे भारत के लिये नई
प्रेरणा नया उत्थान लिये;

मुर्दा शरीर में नये प्राण
प्राणों में नव अरमान लिये,
स्वागत !स्वागत ! मेरे आगत !
तुम आओ स्वर्ण विहान लिये !

युग-युग तक पिसते आये
कृषकों को जीवन-दान लिये,
कंकाल-मात्र रह गये शेष
मजदूरों का नव त्राण लिये;

श्रमिकों का नव संगठन लिये,
पददलितों का उत्थान लिये;
स्वागत !स्वागत ! मेरे आगत !
तुम आओ स्वर्ण विहान लिये !

सत्ताधारी साम्राज्यवाद के
मद का चिर-अवसान लिये,
दुर्बल को अभयदान,
भूखे को रोटी का सामान लिये;

जीवन में नूतन क्रान्ति
क्रान्ति में नये-नये बलिदान लिये,
स्वागत ! जीवन के नवल वर्ष
आओ, तुम स्वर्ण विहान लिये !

– सोहनलाल द्विवेदी

अब्राहम टी. कावूर ने अपना पूरा जीवन समाज में फैले अंधविश्वास, चमत्कारवाद और ढोंग का पर्दाफाश करने में लगा दिया। उनके विचार आज भी अत्यंत प्रासंगिक हैं। उनका का मानना था कि तथाकथित बाबाओं, तांत्रिकों और धर्मगुरुओं द्वारा दिखाए जाने वाले चमत्कार वास्तव में हाथ की सफाई, मनोवैज्ञानिक चालें और वैज्ञानिक नियमों का दुरुपयोग होते हैं। वे स्वयं मंच पर ऐसे चमत्कार दोहराकर दिखाते थे, ताकि आम लोग समझ सकें कि इनमें कोई दैवी शक्ति नहीं होती। उनके अनुसार अंधविश्वास भय और अज्ञान से जन्म लेता है, और इसका लाभ उठाकर कुछ लोग समाज का शोषण करते हैं। इसलिए उन्होंने लोगों से अपील की कि वे चमत्कारों पर नहीं, बल्कि तर्क और प्रमाण पर विश्वास करें।

कावूर का कहना था कि मनुष्य को हर विश्वास और परंपरा पर किंतु करने का अधिकार है। वैज्ञानिक सोच व्यक्ति को स्वतंत्र बनाती है और उसे डर, पाप-बोध और अंधआस्था से मुक्त करती है। उन्होंने मानव कल्याण को सबसे बड़ी बात माना और कहा कि समाज की वास्तविक प्रगति शिक्षा, विवेक और वैज्ञानिक सोच से ही संभव है, न कि अंधविश्वासों से।

मुख्य संपादक
कुलजीत डँगर खेड़ा
kuljittarkshil@gmail.com
9781925566
संपादक
गुरमीत अम्बाला
tarksheeleditor@gmail.com
94160 36203
संपादकी मंडल
जसवंत मोहाली (98555-30721)
अजायब जलालाना (94167 24331)
कृष्ण कायत (98961 05643)

विदेशी प्रतिनिद्धि
अवतार बाई, वैनकुवर
+1 672 558-5757
बीरबल भदौड़, कैलगिरी
+ 1 204 894-4371
बलदेव रहिपा, टरांटो
+ 1 41 688 17202
अच्छर सिंह खरलवीर (U.K.)
+ 1 44 748 635 1185
अवतार गोंदारा (U.S.A.)
+ 1 (559) 375-2589

पत्रिका शुल्क :-
वार्षिक : 150/- रू.
विदेश : वार्षिक : 40 यू.एस.डॉलर
रचनाएं, पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के लिए पता:
मुख्य कार्यालय
तर्कशील भवन, संघेडा बाईपास
तर्कशील चौंक, बरनाला-148101
01679-241466, 98769 53561
tarkshiloffice@gmail.com
पत्रिका को पढ़ने के लिए लॉग ऑन करें:
www.tarksheel.org
Tarksheel Mobile App :
Readwhere.com

राजिन्दर भदौड़, प्रकाशक, मुद्रक, स्वामी की तरफ से तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.) द्वारा अप्पू आर्ट प्रैस, शाहकोट (जलन्धर) से मुद्रित करके मुख्य कार्यालय तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.), बरनाला, (पंजाब) से तर्कशील सोसायटी पंजाब व हरियाणा के माध्यम से वितरण के लिए जारी किया।

तर्कशील पथ पत्रिका हेतु शुल्क
पंजाब नैशनल बैंक में
तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.) के नाम से
खाता सं. 0044000100282234
IFSC: PUNB0004400 में जमा करा सकते है।
एंव पत्रिका भेजने के लिए एड्रेस व शुल्क की स्क्रीन शॉट/रसीद मोबाइल नम्बर
+91 98156 70725 पर वट्सएप कर दें।

इस अंक में

आनलाईन पत्रिका को पढ़ने के लिए :

www.tarksheel.org,
http://tarksheelblog.wordpress.com
सर्च करें: tarksheel :
www.archive.org
Readwhere.com

संपादकीय

हर वर्ष का अंत हमें बीते समय का आकलन करने और नए वर्ष की तैयारी करने का अवसर देता है। यह समय आत्ममंथन, नये संकल्पों और आशाओं का प्रतीक माना जाता है। लेकिन जब हम नए वर्ष का स्वागत करते हैं, तो अक्सर यह उत्सव केवल भावनाओं, परंपराओं और अंधविश्वासों के घेरे में सिमट कर रह जाता है। इस अवसर पर यदि हम अपने दृष्टिकोण को वैज्ञानिक सोच और तार्किकता से जोड़ें, तो यह नया वर्ष वास्तव में नवजागरण का वर्ष बन सकता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अर्थ है – हर विचार, विश्वास और निर्णय को तथ्यों, प्रमाणों और विवेकपूर्ण तर्कों के आधार पर परखना। यह दृष्टिकोण हमें अंधविश्वासों, कट्टरताओं और झूठी परंपराओं से मुक्त करता है।

आज जब दुनिया विज्ञान और तकनीक की तेज़ प्रगति से बदल रही है, तब समाज को भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना होगा। हमारा जीवन विज्ञान की देन है – बिजली, इंटरनेट, चिकित्सा, परिवहन, और कृषि में वैज्ञानिक नवाचारों ने मानव जीवन को सरल बनाया है। लेकिन विडंबना यह है कि तकनीकी युग में भी हमारे समाज के बड़े हिस्से पर अंधविश्वासों का साया है। किसी तिथि या राशि के आधार पर भविष्य बताना, नए वर्ष की शुभ–अशुभ गणना करना या झूठे चमत्कारों पर विश्वास करना – यह सब वैज्ञानिक चेतना के विपरीत है।

यदि हम नए वर्ष को वास्तव में सार्थक बनाना चाहते हैं, तो हमें सोच में वैज्ञानिकता को शामिल करना होगा। वैज्ञानिक दृष्टिकोण हमें यह सिखाता है कि हर समस्या का हल खोजा जा सकता है – केवल भावना से नहीं, बल्कि प्रयोग, अध्ययन और अनुभव से। यही दृष्टिकोण हमें सामाजिक बुराइयों से भी मुक्ति दिला सकता है। चाहे वह लिंगभेद हो, जातिवाद हो या पर्यावरण का दोहन – इन सबका समाधान शिक्षा, अनुसंधान और वैज्ञानिक सोच से ही संभव है।

नए वर्ष पर किए जाने वाले संकल्पों में हमें केवल व्यक्तिगत सफलता नहीं, बल्कि समाज में वैज्ञानिक चेतना फैलाने का भी संकल्प लेना चाहिए। बच्चों में प्रश्न पूछने की आदत को प्रोत्साहित करें, धर्म या परंपरा के नाम पर थोपे गए भ्रमों को चुनौती दें, और विज्ञान के प्रति सम्मान की भावना विकसित करें। यही असली ''नया वर्ष'' होगा – जब हम अपने भीतर जिज्ञासा, खोज और सत्य की भावना को पुनर्जीवित करेंगे।

भारत का संविधान भी नागरिकों से ''वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानवतावाद और ज्ञानार्जन की भावना'' विकसित करने का आग्रह करता है। इसका अर्थ है कि यह सोच केवल वैज्ञानिकों तक सीमित नहीं, बल्कि हर नागरिक का कर्तव्य है। यदि हम यह दृष्टिकोण अपनाएँ, तो नया वर्ष केवल तिथि परिवर्तन नहीं रहेगा, बल्कि विचारों के नवजीवन का पर्व बन जाएगा।

नए वर्ष का सच्चा उत्सव दीपों, आतिशबाज़ियों या पार्टियों में नहीं, बल्कि ज्ञान के प्रकाश में होना चाहिए। आइए, इस वर्ष हम अपने जीवन में अंधविश्वास के अंधकार को दूर करें और वैज्ञानिकता का दीप जलाएँ – ताकि आने वाला कल न केवल नया, बल्कि प्रकाशमान और प्रगतिशील भी हो।

यदि हम इसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखें, तो हर वर्ष हमारे लिए नयी संभावनाओं, नयी खोजों और नयी सोच का द्वार बन सकता है। यही है – विज्ञान से प्रेरित नववर्ष का सच्चा अर्थ.......।

जो होगा देखा जाएगा-फ़हमीदा रियाज़

-जसवंत मोहाली

''तुम बिल्कुल हम जैसे निकले'' – यह कविता मैंने कहाँ और कब पढ़ी थी, मुझे याद नहीं। यह वह समय था जब मोदी की अगुवाई में बनी पहली भाजपा सरकार को चार वर्ष हो चुके थे। भाजपा नेताओं द्वारा हिंदू भाइयों के लिए बिना कोई नेक काम किए, केवल उनकी भावनाओं से खेलने के बयान आने शुरू हो गए थे। पाकिस्तानी फ़िल्मों, चैनलों को रोक दिया गया। यही सब हमीं से अलग हुआ पाकिस्तान पहले ही कर रहा था। पाकिस्तान अपनी अर्थव्यवस्था को तबाह करते हुए, भारत से डराते हुए, मुसलमानों के लिए एक भी नेक काम किए बिना, सिर्फ़ इस्लाम की घुट्टी पिलाकर अपनी सत्ता सलामत रख रहा था/है। सत्ता से सवाल पूछने वाला तुरंत हिंदुस्तान का एजेंट घोषित कर दिया जाता है।



कविता पढ़कर इसके लेखक के बारे में जानने की उत्सुकता हुई। इंटरनेट ने तुरंत बता दिया कि इसके रचयिता कौन हैं। यह फ़हमीदा रियाज़ नाम की पाकिस्तानी कवयित्री थीं जो 2018 में 72 वर्ष की उम्र में फौत हो गईं।

आप पहले यह कविता पढ़िए–

तुम बिल्कुल हम जैसे निकले

तुम बिल्कुल हम जैसे निकले, अब तक कहाँ छुपे थे भाई।
वो मूर्खता, वो घामड़पन, जिसमें हमने सदी गंवाई।
आखर पहुँची द्वार तुम्हारे, अरे बधाई बहुत बधाई।

प्रेत–धर्म का नाच रहा है, क़ायम हिंदू राज करोगे
सारे उल्टे काज करोगे, अपना चमन तराज़ करोगे।
तुम भी बैठे करोगे सोचा, पूरी है वैसी तैय्यारी
कौन है हिंदू कौन नहीं है, तुम भी करोगे फ़तवे जारी।

होगा कठिन यहाँ भी जीना, दाँतों आ जाएगा पसीना
जैसे–तैसे कटा करेगी, यहाँ भी सबकी सांस घुटेगी।
क्या हमने दुर्दशा बनाई, कुछ भी तुमको नज़र न आई?
कल दुख से सोचा करती थी, सोचके बहुत हँसी आज आई।

तुम बिल्कुल हम जैसे निकले, हम दो क़ौम नहीं थे भाई।

भाड़ में जाए शिक्षा–विक्षा, अब जाहिलपन के गुण गाना

आगे गड्ढा है ये मत देखो, वापस लाओ गया ज़माना।

मशक करो तुम आ जाएगा, उल्टे पाँव चलते जाना

ध्यान न दूसरा मन में आए, बस पीछे ही नज़र जमाना।

एक जाप–सा करते जाओ, बारम्बार यही दोहराओ

कैसा वीर महान था भारत, कितना आलीशान था भारत!

फिर तुम लोग पहुँच जाओगे, बस 'परलोक' पहुँच जाओगे

हम तो हैं पहले से वहाँ पर, तुम भी समय निकालते रहना

अब जिस नरक में जाओ वहाँ से, चिट्ठी–विट्ठी डालते रहना।

कोई कवयित्री पाकिस्तान में बैठकर भारत की स्थिति को इतनी शिद्दत से महसूस कर ले कि उसके भीतर से निकले व्यंग्यात्मक काव्य बोल भारतीय जनमानस को सावधान कर रहे हों– ऐसा तभी हो सकता है जब वह पाकिस्तान की परिस्थितियों से भी दो–चार हो रही हो।

कहानी और कविता की 15 से अधिक पुस्तकों की

लेखिका फ़हमीदा सदा विवादों के केंद्र में रहीं। ''पत्थर की ज़ुबान'' उनका पहला काव्य संग्रह 1967 में प्रकाशित हुआ।

उनका जन्म 28 जुलाई 1946 को अंग्रेज़ी राज के समय भारत के सूबे उत्तर प्रदेश के मेरठ शहर में हुआ। वह धरती जहाँ सदियों से विभिन्न संस्कृतियों के लोग सह-अस्तित्व के धागे में पिरोए एक साथ रहते आए थे- वहाँ अंग्रेज़ों की औपनिवेशिक नीति ने उकसाकर फ़िरकापरस्ती को हवा दी और धीरे-धीरे आम जनमानस भी दो देशों की मिथ्या को सत्य मान बैठा और उपमहाद्वीप विभाजित हो गया।

उनके पिता रियाज़ुद्दीन अहमद एक शिक्षा-विशेषज्ञ थे, जिनकी बदली सिंध में हो गई। फ़हमीदा केवल चार वर्ष की थीं जब उनके पिता का निधन हो गया। उर्दू और हिंदी साहित्य से उन्हें बचपन से ही लगाव था। उन्हें जल्दी ही अहसास हो गया कि दोनों कौमों की ''इज़्ज़त की रखवाली'' का काम मर्दों ने केवल हथियारों से ही नहीं किया बल्कि स्त्री के शरीर को रौंदकर भी किया है। दोनों ओर अगवा की गई स्त्री की कीमत, दूसरे पक्ष के कब्ज़े में लिए गए सामान से अधिक नहीं थी।

शिक्षा पूरी कर वे रेडियो एनाउंसर बन गईं। विवाह के बाद कुछ वर्ष इंग्लैंड में रहीं, लेकिन पति से अनबन हो गई। 1969 से 1974 का समय निजी दुखांत का समय था, जिसके दौरान उन्होंने ''बदन दरीदा'' जैसी कृति लिखी।

लंदन में ही वे अमृता प्रीतम से मिलीं, जब वे बीबीसी उर्दू सेवा में काम करती थीं। कविता, राजनीति और धर्मनिरपेक्ष विचारों की समानता ने उन्हें पास ला दिया। तलाक के बाद वे पाकिस्तान लौटीं पर वहाँ का समाज ''बदन दरीदा'' को स्वीकारने को तैयार नहीं था। स्त्री-देह, यौनिकता, मासिक धर्म, अस्मिता जैसे विषयों को लेकर साहित्यिक हलकों में भी उन पर उँगली उठी। उनकी कविताओं में स्त्री-स्वर, आत्मविश्वास और विद्रोह कई लोगों को ''बाग़ीपन'' लगा।

फिर पाकिस्तान को मिला जनरल ज़िया-उल-हक़, जिसका मानना था कि इस्लामी क़ौम की इज़्ज़त स्त्री के शरीर से होकर गुजरती है। टकराव अवश्यंभावी था। जब स्त्री के लिए काला हिजाब अनिवार्य कर दिया गया तो फ़हमीदा ने उसके उत्तर में ''चादर और चारदीवारी'' लिखी, जो आंदोलनों की आवाज़ बन गई।

फिर उन्होंने दूसरी शादी कर ली। उनके पति ज़फ़र अली सिंधी वामपंथी कार्यकर्ता थे। दोनों ने ''आवाज़'' नाम की पत्रिका निकाली, लेकिन ज़िया के शासन में उनकी उदार राजनीति अस्वीकार्य थी। उन पर 10 मुकदमे दर्ज हुए, जिनमें देशद्रोह भी शामिल था। पत्रिका बंद करनी पड़ी। उन्हें भारत का एजेंट कहा गया।

पाकिस्तान में औरत होना और फिर प्रगतिशील औरत होना एक मुश्किल रास्ता है। औरत परस्त होना, कवित्री होना, मानव अधिकारों की बात करना तो रास्ते में कांटे बिछाने जैसी बात है। इसकी कीमत उन्हें 7 वर्ष के निर्वासन से चुकानी पड़ी। फहमीदा रियाज और उसके पति को गिरफ्तार कर लिया गया। फहमीदा की जमानत हो गई। उन दिनों ही भारत से मुशायरे के लिए न्योता मिला तो वह भारत आ गई। उसे समय अमृता प्रीतम अभी जिंदा थी।

भारत में अमृता प्रीतम ने इंदिरा गांधी से बात कर उन्हें आश्रय दिलाया। वे जामिया मिलिया इस्लामिया दिल्ली से जुड़ीं, यहीं पर उसने संस्कृत और हिंदी सीखी, फिर जेएनयू की फेलोशिप मिल गई।

जनरल ज़िया की विमान दुर्घटना में मृत्यु के बाद 1988 में वे कराची लौटीं। उन्होंने NGO बना कर बच्चों और महिलाओं के बारे में पुस्तकें प्रकाशित करना शुरू किया। जब बेनजीर भुट्टो पाकिस्तान की प्रधानमंत्री थी तो उन्होंने शिक्षा विभाग में कार्य किया। भारत में निर्वासन के समय ''अपना जुर्म तो साबित है'' लिखी, जिसमें तानाशाही के कष्टों का वर्णन है। उनके दो नावल भी प्रकाशित हुए। अब फहमीदा एक खास आवाज बन चुकी थी। वह आमतौर पर ही यूरोप और अमेरिका की साहित्यिक गोष्ठियों में जाती। इस समय उसने आईएमएफ की नीतियों के खिलाफ कविता लिखी - आदमी की जिंदगी।

2011 में पेन अमेरिका एशियन सोसायटी के निमंत्रण पर अमेरिका गईं। परिचय में उन्हें ''इस्लामिक दुनिया की महान महिला आवाज़'' कहा गया, अपने परिचय में इस्लामिक शब्द उसको अच्छा नहीं लगा। इस पर उन्होंने चुटकी लेते हुए कहा कि ''मैं यह कहने से अपने आप को रोक नहीं पा रही हूं कि मुझे एक ईसाई देश में आकर खुशी है जहाँ प्रोटेस्टैंट और कैथोलिक बिना लड़ाई के रह रहे हैं।'' उसका अमेरिका को

इसाई देश कहना और इसाई ग्रुपों में होती रही खूनी झड़पों की ओर किया छुपा इशारा समझ कर हाल में हंसी गूंज उठी। उसने आगे कहा – ''तुम जानते हो कि हम अमेरिका को एक ईसाई देश के तौर पर नहीं देखते, लेकिन तुम हमें मुस्लिम के तौर पर देख रहे हो''। फहमीदा के व्यंग की चुभन को भांपकर आयोजकों ने फहमीदा से माफी मांगी।

वे अंग्रेज़ी, उर्दू, सिंधी और फ़ारसी जानती थीं। उन्होंने रूमी, अतिया दाऊद, फ़र्रुखज़ाद का अनुवाद किया। उन्होंने कहा– ''सभ्यता स्थिर नहीं होती। यह बहती है, बदलती है, नई संस्कृतियों का निर्माण करती है। लोकतंत्र भी पश्चिम से आया है–क्या हमने उसे अस्वीकार किया है?''

Scroll.in से बातचीत में उन्होंने कहा–

''एक कवि लोगों के सोचने के ढंग में अथवा सरकार के कामकाज पर प्रभाव अवश्य डालता है परंतु आप उसका असर तुरंत नहीं देख सकते। आप क्या सोचते हैं और समाज कैसे बदलता है? मुझे शब्दों से प्रेम है। मैं डिक्शनरी को कविता की किताब की तरह पढ़ सकती हूँ। मैं कभी खुद को 'बाग़ी' नहीं मानती। कवि की मानसिक दशा ऐसी होती है कि वह वही लिखता है जो सोचता है।'' औरत परस्ती के बारे में वे बड़ी स्पष्ट हैं – औरत मर्द ही की तरह बहुत सी संभावनाएं समोए हुए एक मनुष्य है। केवल उसने अभी सामाजिक समता हासिल करनी है। मैं कहती हूं कि औरत को बिना परेशानी से सड़क पर चलने का हक हो। खेलने का, तैरने का, कविता पसंद करने का, मर्द की ही तरह, बिना किसी अनैतिकता का दाग लगे।

हेराल्ड अखबार के लिए अमर सिंधु से बातचीत के कुछ अंश–

क्या साहित्य रचना के लिए विचारधारा ज़रूरी है ?

फ़हमीदा – ''हाँ, जब साहित्य व्यक्ति की जगह समाज की बात करता है तो उसे पैर जमाने के लिए विचारों की जमीन चाहिए। रचनात्मकता विचार की मिट्टी में ही जड़ पकड़ती है। हमारे लोकगीत और लोक कथाएं विचारधारा से नहीं विचारों से निकलते हैं। यह जरूरी नहीं कि साहित्य की रचना वर्ग चेतना से ही हो। 20वीं शताब्दी के बड़े लेखक जैसे पाब्लो, नाजिम हिकमत, फ़ैज़ मार्क्सवादी थे। चित्रकला की दुनिया में क्रांति लाने वाला कलाकार पिकासो फ्रांस की कम्युनिस्ट पार्टी का मेंबर था। वहीं दूसरी और टॉलस्टॉय और दोस्तोवसकी जैसे कद्दावर लेखक व्यक्ति और समाज को ईसाईयत के संदर्भ में रखकर देखते थे। हालांकि देखा जाए तो यह भी एक विचारधारा से साहित्य की रचना करना ही है।

प्रश्न : आपको लगता है कि प्राचीन क्लासिक रचनाओं की तुलना में हमारी समकालीन रचनाएँ दुनिया भर के पाठकों में अपनी जगह नहीं बना सकी हैं?

फहमीदा : मैं ऐसा नहीं सोचती। हमारे समकालीन लेखकों में भी सार्वभौमिक अपील है, पर हमें इन उपन्यासों के क्लासिक बन जाने का इंतज़ार करना पड़ेगा, क्योंकि समकालीन युग किसी भी रचना को तुरंत क्लासिक घोषित नहीं कर सकता। मैं कुछ उपन्यासों का जिक्र करना चाहूँगी–जैसे राग दरबारी के लेखक श्री लाल शुक्ल का मैला आंचल। किरण देसाई का इनहेरिटेंस ऑफ़ लॉस–यह भारत और अमेरिका के आपसी संबंधों पर आधारित है। इसका विषय मुझे अपने बहुत क़रीब लगता है–इस उपमहाद्वीप की भीतर की जद्दोजहद, उसकी विरोधाभासपूर्ण स्थितियाँ और उसकी विविधता। यह बहुत ही प्यारा उपन्यास है। किरण देसाई एक अद्भुत लेखिका हैं। इसी तरह ओरहान पामुक का उपन्यास स्नो, जो पश्चिम और मुस्लिम टकराव के बारे में बताता है। फिर अरुंधति रॉय का द गॉड ऑफ़ स्मॉल थिंग्स। पाकिस्तानी साहित्य में ऐसे उपन्यासों की अभी कमी है–या शायद मैंने अभी तक पढ़े नहीं।

प्रश्न : पाकिस्तानी अंग्रेज़ी उपन्यास सिर्फ़ पश्चिमी पाठकों के लिए लिखा जा रहा है। क्या आप सहमत हैं?

फहमीदा : मैं सहमत नहीं हूँ। यह गलत धारणा है। अगर युवा लेखक अंग्रेज़ी में अच्छा लिख सकते हैं तो इसमें बुराई क्या है? मोहसिन हमीद का उपन्यास ''द रिलक्टेंट फ़ंडामेंटलिस्ट'' मैंने पढ़ा है–एक अलग तरह के विषय पर लिखा गया बेहतरीन उपन्यास। इसी तरह मोहम्मद हनीफ़ का ''ए केस ऑफ़ एक्सप्लोडिंग मैंगोज़'' बताता है कि पाकिस्तान में सेना ने किस तरह क़ब्ज़ा जमाया। अगर हमारा अंग्रेज़ी साहित्य पश्चिम को आकर्षित करता है, तो इसमें गलत क्या है? मुझे बहुत खुशी होती है जब अली अकबर नातिक की कहानियाँ ब्रिटिश जर्नलों में छपती हैं।

प्रश्न : आपके लेखन की प्रेरणा का स्त्रोत क्या है? क्या यह सामाजिक बदलाव है या आपके भीतर का शोर-शराबा?

फहमीदा : मैंने अपने से पहले लिखी गई कविता की परंपरा को आगे बढ़ाया है। मेरे पहले भी खूबसूरत कविता

लिखी गई–फ़ैज़, शेख़ आयाज़, गुल ख़ान नसिर–इन लोगों ने भी राजनीतिक चेतना वाली कविता लिखी। फर्क सिर्फ़ इतना है कि मैं एक औरत भी हूँ। मैं साहित्य को ज़िंदगी से अलग करके नहीं देखती। अफ़सोस की बात है कि हम उन लोगों को याद नहीं रखते जिन्होंने हमारे देश और लोगों के लिए साहित्य रचा। पाकिस्तान लगातार एक के बाद एक समस्या से घिरा रहा है और लेखक इसे नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते।

प्रश्न : आपको क्या लगता है कि आपके आलोचक आपसे किस बात पर नाराज़ रहते हैं?

फहमीदा : अमर, तुम खुद एक औरत भी हो और कवयित्री भी। तुम्हें पता है कि पुरुष-प्रधान समाज में–खासकर हमारे जैसे समाज में–एक औरत के विचारों और उसकी रचनात्मकता को गंभीरता से लेना ही नहीं चाहते। ज़्यादातर पुरुषों के लिए आपका होना सिर्फ़ एक औरत होना है, जिसकी पहचान उसके बिस्तर तक सीमित है। अगर किसी औरत के राजनीतिक विचार भी हैं, तो यह मान लिया जाता है कि वह किसी पुरुष से तोते की तरह रटकर बोल रही है–कि कोई पुरुष उसके दिमाग़ और शब्दों को नियंत्रित कर रहा है। आम धारणा यह है कि औरत मूल रूप से सोचने-समझने के काबिल नहीं होती। लेकिन किया ही क्या जा सकता है–औरत को लगे रहना पड़ता है, और यही कोशिश मैं भी कर रही हूँ।

प्रश्न : अब जब लेखकों के बीच रचनात्मक बहस खत्म हो चुकी है और लेखक-समाज के बीच संवाद को कट्टरपंथियों ने दबा दिया है, तो क्या ऐसे समय में भी लेखक को लिखते रहना चाहिए?

फहमीदा : ''साहित्य की मृत्यु हो चुकी है''–यह बात कई बार कही जा चुकी है। इतिहास में ऐसा समय कभी नहीं आया जब लिखे हुए शब्दों की इतनी ज़रूरत हो, जितनी आज है। पाकिस्तानियों ने बहुत समय तक 'भेड़िए-भेड़िए' चिल्लाया, पर अब भेड़िया वास्तव में हमारे सामने है–उसके दाँत हमारी गर्दन पर हैं। देश को किसी भी समय पागल कट्टरपंथी खा सकते हैं या उसे टुकड़ों में बाँट सकते हैं। ऐसे में लिखना और बोलना ही कलाकारों और साहित्यकारों का अंतिम बचा हुआ उद्देश्य है। अच्छा है कि तालिबान कविता और साहित्य नहीं पढ़ते! (अगर वे पढ़ते होते तो शायद वे वह सब न करते जो वे कर रहे हैं।) जैसा फ़ैज़ ने कहा है–

''बोल कि लब आज़ाद हैं तेरे, बोल कि जो कहना है कह ले।''

इसीलिए हमें लिखना जारी रखना पड़ेगा।

और अंतिम समय तक वे लिखती रहीं–

तुम जिस लम्हे में ज़िंदा हो, यह लम्हा तुमसे ज़िंदा है
वह वक़्त नहीं फिर आएगा
तुम अपनी करनी कर गुज़रो, जो होगा देखा जाएगा।

आज़ादी से सोचने की फ़िज़ा बनाने के लिए फ़हमीदा रियाज़ ने अपनी जिंदगी का बड़ा हिस्सा न्योछावर कर दिया।

जिंदगी का सही मार्ग

धर्म नैतिकता बनाता है यह एक असत्य कथन है, नैतिकता कोई धार्मिक कृत्य नहीं है। नैतिकता किसी भी समाज की भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है। एक देश और किसी काल की नैतिकता, भौतिकवादी परिस्थितियां बदलने से बदल जाती है किसी समाज में एक विवाह करना नैतिक है किसी में बहु विवाह करना। कहीं भौगोलिक परिस्थितियों के कारण मृत को जलाया जाता है, कहीं पर दफनाया और भी विश्व भर में बनी नैतिकताओं का आधार अलग-अलग और कहीं पर तो विरोधी भी है। धर्मो और ईश्वर के कारण समाज में जड़ता आती है। धर्म परिवर्तन का विरोध करता हैं,जबकि विज्ञान उस सत्य की तरफ ले जाता है जो इंसानी जीवन को बेहतर बनाए। भारत समेत कट्टर पंथी देशों में जिनमें धर्म और ईश्वर का प्रोपेगंडा व्यापक है, वह पिछड़े हुए हैं। धर्म के रहते भी नैतिकता का अभाव है, इंसानी गरिमा बदहाल है।

दूसरा अस्तित्वगत प्रश्नों के हल धर्मो द्वारा सुझाने की बात की जाती है यह भी आधार हीन है। धर्म किसी भी अस्तित्वगत प्रश्नों का कल्पना पर आधारित उतर देता है इसी लिए सभी धर्मो में अस्तित्व के प्रश्नों के उतर भिन्न और अवैज्ञानिक हैं। विज्ञान जिस प्रश्न को अभी हल नहीं कर पाया भविष्य में कर लेगा, लेकिन तथाकथित धर्मो की तरह झूठ नहीं फैलाएगा।

असल में विज्ञान जीने का ही जरिया नहीं, जीने का नजरिया भी सिखाता है।

जय विज्ञान, जय इंसान

लोग झूठी कहानियाँ क्यों बनाते हैं? लोग झूठी कहानियों पर विश्वास क्यों करते हैं?

– राजपाल सिंह

समय-समय पर ऐसी कहानियाँ सामने आती रहती हैं जिनमें कोई सच्चाई नहीं होती। इनमें वर्णित घटनाएँ प्राकृतिक नियमों के दायरे में नहीं आतीं, इसीलिए इन्हें चमत्कार मान लिया जाता है। तर्कशील सोसाइटी की अत्यधिक ऊर्जा इन कथित चमत्कारी कहानियों का खंडन करने में खर्च होती है। आजकल सोशल मीडिया के ज़रिए ऐसी कहानियाँ खूब प्रचारित की जाती हैं। लेकिन ऐसी झूठी कहानियाँ गढ़ना कोई नई बात नहीं है, ऐसी कहानियाँ बहुत पहले भी गढ़ी और प्रचारित की जाती रही हैं। आगे बढ़ने से पहले, नीचे दी गई तस्वीरों पर एक नज़र डालिए।



Another traveller, Münster, published a book in 1550 where he described people such as these whom he had also seen "with his own eyes".



The legendary bird Rukh.

ये चित्र विभिन्न यूरोपीय यात्रियों द्वारा एशियाई और अफ्रीकी देशों की अपनी यात्राओं के बारे में लिखी गई पुस्तकों से लिए गए हैं। जब वे यूरोपीय यात्री अपने देशों को लौटते, तो वहाँ देखे गए दृश्यों के बारे में कई अतिरंजित कहानियाँ सुनाते। अपनी यात्रा की कहानियों को रोचक और प्रभावशाली बनाने के लिए, वे कई काल्पनिक बातें भी जोड़ते थे। एक अंग्रेज यात्री, जॉन मैंडविल, 1327 ई. में इंग्लैंड से यात्रा पर निकला और उसने एशिया और अफ्रीका में 33 वर्ष बिताए। लौटते समय, उसने लिखा कि उसने वहाँ ऐसे लोग देखे जिनका केवल एक ही पैर था, और वे इसी एक पैर से बहुत तेज़ चल सकते थे। उनका यह एक पैर बहुत बड़ा था, इतना बड़ा कि जब उन्हें धूप लगती, तो वे अपना पैर ऊपर उठा लेते और उनका यह बड़ा पैर उन्हें छतरी की तरह छाया देता। (ऐसा लगता है कि यूरोपीय यात्रियों को एशिया और अफ्रीका का सूरज एक बड़ी समस्या लगता था, और उन्होंने इसे लेकर ऐसी कल्पनाएँ की होंगी, क्योंकि इसी सज्जन ने यह भी लिखा था कि उन्होंने वहाँ ऐसे लोग देखे जिनके ऊपरी होंठ ही उनके शरीर को छाया दे रहे थे।)

इससे भी ज़्यादा विचित्र थी 'सूचनाओं' की किताब, कॉस्मोग्राफिया, जो एक जर्मन यात्री सेबेस्टियन मुंस्टर ने 1544 में लिखी थी। उस किताब में उसने लिखा था कि उसने बौनों को देखा जो सेब की खुशबू से ही तृप्त हो जाते थे; ऐसे साँप जो नाजायज़ बच्चों को मारते थे और जायज़ बच्चों की रक्षा करते थे। इस किताब में ऐसे होंठों का भी ज़िक्र है जो छाया दे सकते थे और ऐसे पैर जो छतरियों का काम करते थे। लोगों को ये सब बातें दिलचस्प लगीं। इसीलिए इस किताब का 200 सालों तक बार-बार पुनर्मुद्रण हुआ और इसके सैकड़ों संस्करण प्रकाशित हुए। गौरतलब है कि इस किताब के ज़रिए उन्होंने एशियाई और अफ़्रीकी महाद्वीपों की काफ़ी भौगोलिक जानकारी भी दी।

ऐसे और भी कई मध्यकालीन ग्रंथ हैं जिनमें ऐसे बड़े पक्षियों का दावा है जो हाथियों को उड़ा ले जा सकते थे या ऐसे लोगों का जिनके मुँह भेड़ियों जैसे थे और ऐसे बिना सिर वाले लोगों का जक्रि कई ग्रंथों में मिलता है जिनके आँख, नाक, मुँह आदि पेट से जुड़े होते थे। ऊपर दिए गए चित्र उन्हीं मध्यकालीन ग्रंथों से लिए गए हैं।

इसकी तुलना में, काल्पनिक कहानियों के बजाय सच्ची कहानियाँ बताने वाली किताबें लोगों के बीच ज़्यादा लोकप्रिय नहीं रहीं। उदाहरण के लिए, प्रसिद्ध यात्री मार्को पोलो ने अपनी चीन और भारत यात्रा के बाद जो किताब लिखी, वह उतनी लोकप्रिय नहीं रही। हालाँकि, मार्को पोलो ने उसमें कई काल्पनिक कहानियाँ भी लिखी थीं। लेकिन वह किताब ज़्यादातर वास्तविकता पर आधारित थी, इसलिए उस समय के लोगों को वह कम दिलचस्प लगी।

ऐसी झूठी कहानियां गढ़ने के पीछे क्या कारण है?

ऐसी कहानियाँ गढ़ने के पीछे की वजह आसानी से समझ में आती है कि हर व्यक्ति अपनी कहानी को रोचक और वज़नदार बनाना चाहता है। यात्रियों के मामले में यह बात भी जोड़ दी गई कि जब कोई यूरोपीय यात्री भारत, चीन या अफ्रीका में कई साल बिताकर लौटता था, तो लोग उम्मीद करते थे कि उसके पास पैसों का खजाना होगा, अगर पैसों का खजाना नहीं, तो उसके पास रोचक जानकारियों का खजाना ज़रूर होगा। अगर नहीं, तो वह मूर्ख है जिसने अपने जीवन के इतने साल बर्बाद कर दिए। कोई भी मूर्ख नहीं कहलाना चाहता, इसलिए वे अपनी कल्पनाओं से दूसरे देशों के बारे में ऐसी कहानियाँ गढ़ लेते थे। बिना सिर वाले लोगों का मिथक यूरोपीय देशों में बहुत प्रचलित था।



An illustration from a book of travels, whose author purported to have seen such a creature "with his own eyes".

ऐसा नहीं है कि अब झूठी कहानियाँ गढ़ी नहीं जातीं। यह व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक ज़रूरत है कि दूसरे उसकी बातों को ध्यान से सुनें और उन्हें महत्व दें। इसलिए, आम आदमी अपनी बातों को महत्वपूर्ण और रोचक बनाने के लिए उनमें अपनी बहुत सी बातें जोड़ देता है।

इसी तरह से कई भूत-प्रेत की कहानियाँ गढ़ी गई हैं। चमत्कार की कहानियों के पीछे भी यही मानसिकता काम करती है। इसलिए कुछ लोगों को ऐसी कहानियाँ गढ़ते रहना पड़ता है। आज, जो बात बढ़ी है वह यह है कि सोशल मीडिया ऐसी काल्पनिक कहानियों को फैलाने का एक ज़रिया बन गया है। इसके साथ एक और पहलू यह जुड़ गया है कि किसी घटना को जितना सनसनीखेज तरीके से पेश किया जाएगा, उसे उतना ही ज़्यादा देखा जाएगा, जितना ज़्यादा देखा जाएगा, उससे पैसे मिलने की उतनी ही ज़्यादा संभावना होगी। इस वजह से, कई ऐसी चीज़ें जो होती ही नहीं या बहुत ही साधारण तरीके से होती हैं, उन्हें चमत्कारी घटनाओं के रूप में पेश किया जाता है। इसीलिए तलवंडी साबो के पास लेलेवाल रोड पर स्थित 'भूतों वाली कोठी' के नाम से मशहूर घर में भी हर छह महीने में कोई न कोई यूट्यूबर कैमरा लेकर आता-जाता रहता है, हालाँकि तर्कशीलों द्वारा इस बात को कई बार स्पष्ट किया जा चुका है कि वहाँ कोई भी भूत-प्रेत नहीं हैं।

लोग इन काल्पनिक कहानियों पर विश्वास क्यों करते हैं ?

अगला सवाल यह उठता है कि कहानीकार अपनी कहानियों को रोचक और महत्वपूर्ण बनाने के लिए कल्पना का सहारा लेते हैं, लेकिन ज़्यादातर लोग उन्हें सच क्यों मान लेते हैं? इसके पीछे का मनोविज्ञान क्या है?

तर्कशील टिप्पणीकार धर्मेन्द्र आज़ाद प्रसिद्ध खगोलशास्त्री कार्ल सागन के हवाले से इसे इस प्रकार समझाते हैं।

कार्ल सेगान अपने एक दोस्त के साथ एक रेस्टोरेंट में खाना खा रहे थे, तभी अचानक बाहर शोर मच गया। कार्ल ने खिड़की से बाहर देखा तो रेस्टोरेंट के बाहर भीड़ जमा हो गई थी। वे आसमान में एक अजीब सी चमकती रोशनी देखकर खुशी से चिल्ला रहे थे और आसमान की ओर इशारा कर रहे थे। लोग उस रोशनी को किसी दूसरे ग्रह से आए अंतरिक्ष यान समझ रहे थे और मान रहे थे और किसी द्वारा फैलाई अफवाह पर विश्वास कर रहे थे कि दूसरे ग्रह से आए ये लोग पृथ्वी से संपर्क बनाने की कोशिश कर रहे हैं।

कार्ल सेगान अपनी वैज्ञानिक सोच और तार्किक दृष्टिकोण के लिए प्रसिद्ध थे। एक खगोलशास्त्री होने के नाते, वे हमेशा अपनी दूरबीन अपने साथ रखते थे। उन्होंने अपनी कार से दूरबीन निकाली और उस प्रकाश को देखने लगे। कुछ ही पलों में उन्हें सच्चाई समझ आ गई। उन्होंने भीड़ को संबोधित करते हुए कहा कि यह किसी दूसरे ग्रह से आया कोई अंतरिक्ष यान नहीं, बल्कि एक नया सैन्य विमान है, जिसे परीक्षण के लिए उड़ाया गया था।

कार्ल सेगान एक महान वैज्ञानिक थे, उनकी कही बातों रद्द नहीं किया जा सकता था। लेकिन जैसे ही उन्होंने यह कहा, लोगों का उत्साह फीका पड़ गया। उनके चेहरों की चमक ऐसे गायब हो गई मानो कोई दिलचस्प कहानी बीच में ही रुक गई हो।

यह देखकर कार्ल ने एक व्यक्ति से पूछा, ''तुम इतने निराश क्यों हो? तुम्हें तो खुश होना चाहिए कि तुम्हें उस चमकदार चीज़ के बारे में सच्चाई पता चल गई और तुम गलतफहमी में पड़ने से बच गए।''

उस आदमी ने नाखुशी और चिढ़ के साथ कहा, ''घर जाकर बच्चों को यह बताने का क्या मतलब है कि मैंने एक नए तरह का सैन्य जेट देखा है? हम सब खुद को खास समझने लगे थे, यह सोचकर कि हमने एक एलियन अंतरिक्ष यान देखा है। आपने हमारी अहमियत ही छीन ली है।''

यह सुनकर कार्ल को एहसास हुआ कि लोगों में पहचान का कितना बड़ा संकट है और रोमांच की कितनी चाहत होती है। सच कहूँ तो, कार्ल ने उनसे वह %जादुई कहानी% छीन ली जो उनकी रोज़मर्रा की ज़िंदगी की नीरसता में रंग भर सकती थी, एक ऐसा अनुभव जो उन्हें ख़ास महसूस करा सकता था।

सच तो यह है कि बिना किसी बड़े मकसद के जी रहे लोग रोमांचक कहानियों की तलाश में रहते हैं। चाहे वो भूत-प्रेत की कहानियाँ हों, पुनर्जन्म की कहानियाँ हों, या एलियंस की काल्पनिक कहानियाँ हों।

यद्यपि ऐसी झूठी कहानियों को गढ़ने और उन पर विश्वास करने के पीछे मनोवैज्ञानिक कारण होते हैं, फिर भी ये वैज्ञानिक सोच के मार्ग से भटकाव का कारण बन जाती हैं। जो लोग इन काल्पनिक कहानियों से संतुष्टि प्राप्त करने लगते हैं, वे सत्य के मार्ग से भटक जाते हैं। ये लोग साधु-संतों और कथावाचकों द्वारा गढ़ी गई कहानियों का गुणगान करने वाली भीड़ में शामिल हो जाते हैं। ऐसी भीड़ न केवल अपना धन और समय बर्बाद करती है, बल्कि इनके द्वारा फैलाई गई अफवाहों को सच मानकर सांप्रदायिक दंगों में भी शामिल हो जाती है। इसीलिए सभी प्रकार की झूठी कहानियाँ, चाहे वे धार्मिक कथावाचकों द्वारा प्रचारित हों, चाहे वे सोशल मीडिया पर किसी सांप्रदायिक पार्टी के आईटी सेल द्वारा गढ़ी गई हों या कुछ स्वार्थी व्यक्तियों द्वारा फैलाई गई हों, एक तर्कशील समाज हमेशा उनकी वास्तविकता को लोगों के सामने लाने का प्रयास करता है। ऐसा करना विज्ञान के विकास और समाज की भलाई के लिए बहुत आवश्यक है।

(संपादक : तर्कशील पंजाबी) 98767 10809

दलील की जीत

अगर इतिहास की धरती को किसी चीज़ ने हिलाया है, तो वह है: बंदूकों से पहले दिमाग़ ने और मौन से पहले दलील ने। दलील वह ज़मीन है जिसमें सत्य के बीज बोए जातें हैं और जब वे बीज अंकुरित होते हैं, तो बड़े-बड़े सिंहासन हिल जाते हैं, रूढ़िवादी सोच बंजर हो जाती है, ढाँचे टूट जाते हैं और क्रांतियाँ जन्म लेती हैं, लेकिन अगर समाज में दलील मर चुकी हो, तो जनता के मौन की स्याही से बंद कमरों में फ़ैसले लिखे जाते हैं और दलील की मृत्यु पर सिर्फ़ मौन ही जन्म लेता है।

मौन - जो सिंहासनों को सुरक्षा देता है,
मौन - जो गुलामी को मंज़ूरी देता है,
मौन - जो झूठ को राज करने देता है,
मौन - जो अंध भक्तों की प्रतिक्रिया बन जाता है।

आखिरी बात:- अगर हम सचमुच चाहते हैं कि हमारी आने वाली पीढ़ियाँ स्वतंत्र, विचारशील और न्यायप्रिय हों, तो हमें आज ही दलीलों के लिए ज़मीन तैयार करनी होगी।

-श्रीराम सैय्यदवाला

कीमती बात

बोलना बुरा नहीं है - लेकिन हमेशा बोलते रहना, कुछ भी न सुनना और कुछ भी न मानना, खुद के पतन की निशानी है। चलते रहना अच्छा है, लेकिन कोहलू के बैल की तरह एक ही जगह पर घूमते रहना,सबसे खतरनाक है। आँखें खोलकर चलना चाहिए, लेकिन खुली आँखों से किसी से टकरा जाना ठीक नहीं। इसीलिए रसूल हमज़ातोव लिखते हैं:

यह न कहो कि मुझे कोई विषय दो,
बल्कि यह कहो, मुझे आँखें दो!

सिजोफ्रेनिया-1

-डा. हमीद दाभोलकर, डा. नरेंद्र दाभोलकर

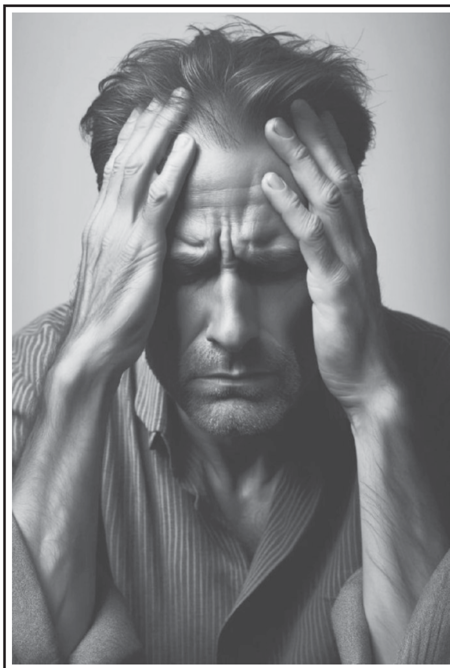
हमने समाज में अपना होश खोये हुए मनोरोगी कई बार देखे हैं। इन मनोरोगियों में अपने आप से बात करना, हँसना, समय पर न नहाना, बेवजह संदेह करना, कुछ समय के लिए हिंसक बर्ताव करना, इस प्रकार के कई लक्षण दिखाई देते हैं। इस प्रकार के लक्षण दिखाई देनेवाले मरीज अधिकांशतः सिजोफ्रेनिया की बीमारी के शिकार होते हैं। मनोविकार से जुड़ी अपराधबोध की भावना अधिकांश मात्रा में सिजोफ्रेनिया की बीमारी से संबंधित है।आज भी सिजोफ्रेनिया के उग्र लक्षण दिखाई देने पर मरीज को भूतबाधा के नाम पर ओझा-मांत्रिक के पास भेजा जाता है। स्पष्ट बाह्य लक्षणों के कारण निदान के लिए बहुत सरल तथा उचित निदान के बाद अच्छी तरह से नियंत्रण में आनेवाले सिजोफ्रेनिया मनोविकार के संदर्भ में हम यहाँ अधिक जानकारी लेंगे।

सिजोफ्रेनिया मनोविकार के बारे में आजकल समाचार पत्रों में बहुत जानकारी प्रकाशित हो रही है। यह बीमारी निश्चित तौर पर कैसी है?

सिजोफ्रेनिया एक उग्र प्रकार की मानसिक बीमारी है। समाज में सामान्यतः एक प्रतिशत लोगों को यह मनोविकार होता है।

साधारणतः सिजोफ्रेनिया का विकार 18 से 25 वर्ष की उम्र के बीच में शुरू होता है। फिर भी उम्र के 40 से 50 वें वर्ष के दौरान और उसके बाद भी शुरू होनेवाले सिजोफ्रेनिया के कुछ प्रकार हैं।

सिजोफ्रेनिया की बीमारी मरीज के जीवन में बहुत ही धीरे-धीरे प्रवेश करती है, इसलिए बीमारी के शुरुआती लक्षण और प्रत्यक्ष रूप से इस बीमारी पर शुरू किया इलाज इस बीच कई महीने या साल भी गुजरते हैं। सिजोफ्रेनिया विचार, संवेदना और इच्छाशक्ति के बीच के संबंधों का विकार है।सिजोफ्रेनिया के मुख्य तौर पर पॉजिटिव और निगेटिव ऐसे दो प्रकार के लक्षण होते हैं। पहले पॉजिटिव लक्षण कौन-से हैं ये जान लेते हैं। इन लक्षणों में भ्रम-विभ्रम का समावेश होता है, भ्रम (डिलूजन्स) विचारों से संबंधित होते हैं तो विभ्रम (हैल्यूसिनेशन्स) संवेदना से संबंधित होते हैं।



संशय का भ्रम सिजोफ्रेनिया का 'पैरानॉइड' यानी संशयी उपप्रकार का मुख्य लक्षण होता है। कोई व्यक्ति या व्यक्ति समूह मुझे जानबूझकर तकलीफ दे रहा है, उसने मुझ पर नजर रखी है, वह मुझे शारीरिक नुकसान पहुँचा सकता है, केवल ऐसे संशय पर निर्भर अवास्तविक विचार इस बीमारी के मरीज के मन में आने लगते हैं।

आसपास घटित होनेवाली सभी घटनाएँ संशय की नजर से देखने की शुरुआत होने की वजह से मन में संशय की एक पक्की गुत्थी तैयार होती है। इस संशय को दूर करने के लिए मरीज से कितने भी सबूतों अथवा इसकी सचाई का विश्लेषण करने के बाद भी यह भ्रम जस का तस रहता है। सिजोफ्रेनिया के भ्रम की एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसके लक्षण असंभव कोटि के होते हैं। जैसे, चाँद पर रहनेवाले लोग किसी विशेष विद्युत लहरी के माध्यम से मुझ पर नजर रख रहे हैं, आदि।

इन भ्रमों के साथ ही अलग-अलग संवेदनाओं का भ्रम सिजोफ्रेनिया का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण है। साधारण स्थिति में वातावरण में 'स्टिम्यूलस' होने पर हमें संवेदना होती है किंतु भ्रम के प्रकार में वातावरण में 'स्टिम्यूलस' न होते हुए भी संवेदना हो सकती है। जैसे, कोई नहीं बोल रहा है तो भी आवाज सुनाई देना, कोई स्पर्श नहीं कर रहा है फिर भी स्पर्श का एहसास होना। सिजोफ्रेनिया के भ्रम मुख्यतः आवाज के होते हैं,

जिसमें कई लोग मेरे बारे में आपसी बातचीत कर रहे हैं, मेरे खिलाफ कोई साजिश रची जा रही है, ऐसा स्पष्ट भ्रम सिजोफ्रेनिया के मरीज को हो सकता हैसिजोफ्रेनिया का मरीज वास्तविक दुनिया और भ्रम-विभ्रम की दुनिया के बीच की सीमारेखा को पहचान नहीं सकता है। इसलिए कई बार मरीज भ्रम की दुनिया में जोने लगता है। अपने आप हँसना, बातें करना, इशारे करना, ऐसे वाह्य लक्षण इसी कारण दिखाई देते हैं।

''मेरे विचारों पर मेरा नियंत्रण है और मेरे विचार बहुत गोपनीय हैं 'इसकी हर स्वस्थ व्यक्ति को गारंटी रहती है। किंतु सिजोफ्रेनिया की बीमारी में ऐसा नहीं होता है। वहाँ मरीज को यह भ्रम होने लगता है कि मेरे विचार अभिव्यक्त किए बिना भी अपने आप दूसरों तक पहुँच रहे हैं। किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा मेरे मन में कुछ विचार घुसेड़ दिए जा रहे हैं या मेरे मन से कुछ विचार निकाल लिए जा रहे हैं, ऐसे भ्रम भी मरीज को होने लगते हैं। मेरे विचार समाचार-पत्रों द्वारा या टीवी द्वारा सभी जगह प्रसारित किए जा रहे हैं, ऐसा भ्रम भी कभी-कभी होता है। कुछ भ्रम तो इतने उग्र होते हैं कि मरीज को लगता है कि मेरे हर विचार या भावना या कृति पर कोई ना कोई हमेशा चर्चा कर रहा है।

दूसरी ओर निगेटिव लक्षण रहते हैं। इसमें मरीज की अब तक अपने जीवन में अर्जित की हुई बौद्धिक क्षमता का लोप शुरू होता है। उसके विचारों में निहित संगति कम होने लगती है। मरीज को बोलचाल का सूत्र रखना कठिन होता है। कुल मिलाकर संभाषण में असंगति आने लगती है। कई बार वह कुछ नए अर्थहीन शब्दों को ईजाद करता है। इसे 'निऑलॉजिज्म' कहते हैं।

ऐसे विभिन्न कारणों की वजह से मरीज हमेशा अस्वस्थ रहने लगता है। उसकी दैनंदिन इच्छाशक्ति पर ही यह बीमारी हमला करती है। परिणामस्वरूप मरीज की कोई भी काम करने की इच्छा धीरे-धीरे क्षीण होने लगती है।

साथ ही इस बीमारी में चेहरे के हावभाव भी धीरे-धीरे कम होने लगते हैं, आँखों की चमक लुप्त होने लगती है और संवादों से भावनिकता कम होने लगती है।

सामान्यत: एक महीने से ज्यादा अवधि तक ऊपर उल्लिखित दो से अधिक लक्षण दिखाई देने लगें तो सिजोफ्रेनिया का निदान होता है। ***(शेष अगले अंक में)***

नफ़रत और अज्ञानता

जब 1981 में मिस्र के राष्ट्रपति अनवर सादात की हत्या हुई, तो उनके हत्यारे से पूछा गया कि उसने ऐसा क्यों किया।

इस्लामिक जिहाद संगठन से संबंधित उनके हत्यारे ने जवाब दिया, ''क्योंकि वह सेकुलर थे।'' न्यायाधीश ने पूछा, ''सेकुलर होने का क्या मतलब है?''

हत्यारे ने जवाब दिया, ''मुझे नहीं पता।''

न्यायाधीश ने उस व्यक्ति से पूछा जिसने मिस्र के लेखक नागुइब महफ़ूज़ को चाकू मारने की कोशिश की थी, ''तुमने श्री नागुइब को चाकू क्यों मारा?''

आतंकवादी ने जवाब दिया, ''क्योंकि उन्होंने धर्म-विरोधी उपन्यास 'द चिल्ड्रन ऑफ़ गैबालवी' लिखा था।''

न्यायाधीश ने आगे पूछा, ''क्या तुमने उपन्यास पढ़ा है?''

अपराधी ने जवाब दिया, ''नहीं।''

न्यायाधीश ने एक अन्य मिस्र के लेखक, फ़राग फ़ौदा के हत्यारे से पूछा, ''तुमने फ़राग फ़ौदा की हत्या क्यों की?''

हत्यारे का जवाब था, ''क्योंकि वह धार्म में विश्वास नहीं करता था।''

न्यायाधीश ने पूछा, ''तुम्हें कैसे पता चला कि वह धर्म में विश्वास नहीं करता था?''

''उसकी किताबें पढ़ने के बाद सब कुछ स्पष्ट हो जाता है।''

''किस किताब में तुम्हें इस बात का सबूत मिला कि वह नास्तिक था?''

हत्यारे ने स्वीकार किया, ''मुझे उस किताब का नाम नहीं पता। मैंने उसे पढ़ा नहीं।''

न्यायाधीश ने आश्चर्य व्यक्त किया, ''तुमने उसे क्यों नहीं पढ़ा?''

हत्यारे का जवाब था, ''मुझे पढ़ना-लिखना नहीं आता।''

ये तीन उदाहरण स्पष्ट करते हैं कि ज्ञान से घृणा कभी नहीं फैलती। घृणा केवल अज्ञानता से फैलती है। इसी तरह समाज अज्ञानता की कीमत चुकाता है। लोगों को अज्ञानी बनाए रखने की कीमत।

(रियल अफ्रीकन बुक्स से)

इंकलाब के महान क्रांतिकारी शायर फैज अहमद फैज

–मुनेश त्यागी

हम मेहनतकश जग वालों से
जब अपना हिस्सा मांगेंगे,
एक खेत नहीं एक देश नहीं
हम सारी दुनिया मांगेंगे।

इस दुनिया में अनेकों अनेक कवि, लेखक, साहित्यकार और शायर हुए हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं से दुनिया के क्रांतिकारी किसानों, मजदूरों, छात्रों, नौजवानों और जनता को प्रभावित किया है। इन सब ने अपनी रचनाओं से दुनिया की क्रांतिकारी प्रगतिशील और जनवादी सोच के लोगों पर अपना प्रभाव डाला है। उनमें से बहुतों ने जनता को क्रांतिकारी कविताएं, लेख और शायरी दी हैं। ऐसे ही एक महान शायर थे, फ़ैज़ अहमद फ़ैज़। उन्होंने अपनी जिंदगी में बहुत-बहुत सारे सरकारी जुल्मों का सामना किया और उसकी सिर्फ एक ही वजह थी, वह थी उनकी क्रांतिकारी कविता, उनकी क्रांतिकारी शायरी, उनका क्रांतिकारी मिजाज, उनके क्रांतिकारी लेख और उनकी क्रांतिकारी ज़बान।



महान क्रांतिकारी शायर फैज का जन्म तत्कालीन भारत में 13 फरवरी 1911 को स्यालकोट में हुआ था। उनके दादा भूमिहीन थे। फैज की शिक्षा पहले मस्जिद में और फिर स्कोच मिशन स्कूल लाहौर गवर्मेंट कॉलेज में हुई। उन्होंने 1929 में इंटरमीडिएट परीक्षा और 1933 में अंग्रेजी में m.a. की डिग्री प्राप्त की। 1935 में प्राध्यापक बनें।

उन्होंने 1936 में पंजाब प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की, 1942 में इंडियन आर्मी में भर्ती हुए और 1944 में कर्नल बनें। 1947 में आर्मी से इस्तीफा दे दिया, 1947 में पाकिस्तान टाइम्स का संपादन किया। 1951 में उनके ऊपर रावलपिंडी षड्यंत्र केस दायर हुआ और उसमें उन पर राजद्रोह का झूठा मुकदमा लगा कर जेल भेज दिया गया, इसमें 1957 में जेल से रिहाई हुई। 1957 को मुंबई यात्रा पर भारत आए। फिर 1958 में गिरफ्तार करके जेल भेजे गए। अपनी रचनाओं की क्रांतिकारिता की वजह से उन्हें 1962 में लेनिन शांति पुरस्कार से नवाजा गया। 20 नवंबर 1984 को लाहौर में उनका निधन हो गया।

फैज अहमद फैज की शायरी सरलतम, साधारण और आम जनता की भाषा में लिखी गई शायरी थी। इसी कारण जनता उनकी रचनाओं को बड़ी आसानी से हाथों-हाथ पकड़ लेती थी, उठा लेती थी। उन्होंने जनता की शायरी की, इंकलाब की शायरी की, अपराधियों और अन्याय के खिलाफ लिखा, इंसाफ बेचने वालों के खिलाफ लिखा, मुंसिफ और मुजरिम की मिलीभगत के बारे में लिखा, जालिमों और नेताओं की मिलीभगत का भंडाफोड़ किया। उन पर सवाल खड़े किए, जनता को जबान दी, बोली दी, जनता को बोलने और सवाल करने का जज्बा, हौंसला और मौका दिया।

वे अपने समय के सबसे कामयाब इंकलाबी शायर बन कर निकले। ऐसी ही शायरी के कारण पाकिस्तान के हुक्मरान, उनकी शायरी से डरते थे, खौफ खाते थे। उन्हें कई बार झूठे और बेबुनियादी मामलों में जेल में भेजा गया, देशद्रोह के झूठे मुकदमों में फंसाया गया, मगर वे झुके नहीं, डरे नही, और शोषित और अन्याय की मारी जनता की समस्याओं को उठाते रहे। उन्होंने जनता को जबान दी, वाणी प्रदान की, हौसला दिया, लड़ने का मादा दिया। इन्हीं सब कारणों से फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ अपने समय के सबसे क्रांतिकारी और जनता के शायर बनकर निकले।

उन्होंने अपने समय में बहुत सारी गजलें, नज्में लिखी, बहुत सारे शेयर लिखे। उनमें से कुछ को हम आपके सामने पेश कर रहे हैं। उनकी शायरी को पढ़कर बडी आसानी से अंदाजा लगाया जा सकता हैं कि उन्हें यूं ही जेल नहीं भेजा गया, उन

पर यूं ही झूठे और देशद्रोह के मुकदमे नहीं लगाए गए। पाकिस्तान की सरकार और पूरा का पूरा लुटेरा सत्ता वर्ग, उनसे भयभीत था, उनकी शायरी से, उनकी रचनाओं से खौफ खाता था। उनकी कुछ क्रांतिकारी रचनाओं की एक झलक इस प्रकार है,

यह गीत उन्होंने अपनी मास्को यात्रा के दौरान लिखा था। यह गीत दुनिया के किसानों और मेहनतकशों और मजदूरों के लिए लिखा गया एक अंतरराष्ट्रीय गीत है। इस गीत से 1980 में हम इतने प्रभावित हुए कि हमने इस गीत को देखते ही देखते कंठस्थ कर लिया और उसके बाद सैकड़ों मीटिंग में, किसानों के सामने, मजदूरों के सामने, नौजवानों विद्यार्थियों और बुद्धिजीवियों के सामने पेश किया। इस गीत में इतनी जीवंतता और क्रांतिकारिता आज भी मौजूद है कि लोग इसे बार–बार सुनने की फरमाइश करते हैं, तो आप की खिदमत में पेश है यह मेहनतकशों का क्रांतिकारी अंतरराष्ट्रीय गीत,

हम मेहनतकश जग वालों से
जब अपना हिस्सा मांगेंगे,
एक खेत नहीं एक देश नहीं
हम सारी दुनिया मांगेंगे।

यहां सागर सागर मोती है
यहां पर्वत पर्वत हीरे हैं,
यह सारा माल हमारा है
हम सारा खजाना मांगेंगे।

जो खून बहा जो बाग उजड़े
जो गीत दिलों में कत्ल हुए,
हर कतरे का हर गुंचे का
हर गीत का बदला मांगेंगे।

ये सेठ व्यापारी रजवाड़े
दस लाख तो हम दस लाख करोड़,
ये कितने दिन अमेरिका से
लडने का सहारा मांगेंगे।

जब सफ सीधी हो जाएगी
जब सब झगड़े मिट जाएंगे,
हम हर एक देश के झंडे पर
एक लाल सितारा मांगेंगे।

1971 में जब पाकिस्तान से अलग होकर बांग्लादेश अलग देश बना, तब बांग्लादेश की जनता की हौसला अफजाई के लिए उन्होंने यह अमिट रचना की थी। देखिएगा,

दरबार ए वतन में जब एक दिन
सब जाने वाले जाएंगे,
कुछ अपनी सजा को पहुंचेंगे
कुछ अपनी जजा को पाएंगे।

एक ख़ाक नशीनों उठ बैठो
अब वक़्त करीब आ पहुंचा है,
जब तख्त गिराए जाएंगे
जब ताज उछाले जाएंगे।

कटते भी चलो बढ़ते चलो
बाजू हैं बहुत हैं सर भी बहुत,
बढ़ते ही चलो कि अब डेरे
मंजिल पै ही डाले जाएंगे।

ऐ जुल्म के मातो लब खोलो
चुप रहने वालों चुप कब तक,
कुछ हश्र तो उनसे उट्ठेगा
कुछ दूर तो नाले जाएंगे।

अब टूट गिरेंगी जंजीरे
अब जिन्दानों की खैर नहीं,
जो दरिया झूम के उठे हैं
तिनकों से ना टाले जाएंगे।

और फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ साहब की यह शानदार नजम, जैसे आज ही लिखी गई हो। यह आज के दौर में पूरी तरह से

समाज, राजनीति, मुजरिम, मुंसिफ, जालिमों, नेताओं, अत्याचारियों और भ्रष्टाचारियों पर लागू होती है, देखिएगा जरा,

जिस देश में मांओं बहनों को
अगयार उठा कर ले जाएं,
जिस देश के कातिल गुंडों को
अशराफ उठाकर ले जाएं।

जिस देश की कोर्ट कचहरी में
इंसाफ टकों में बिकता हो,
जिस देश का मुंशी काजी भी
मुजरिम से पूछ कर लिखता हूं,

जिस देश में जान के रखवाले
खुद जानें लें मासूमों की,
जिस देश में हाकिम जालिम हों
सिसकी न सुने मजबूरों की।

जिस देश के आदिल बहरे हों
आहें ना सुने मासूमों की,
उस देश के हर एक लीडर पर
सवाल उठाना लाजिम है।

उनके कुछ क्रांतिकारी शेर आप की खिदमत में पेश हैं,
यूं ही हमेशा जुल्म से उलझती रही है खल्क
न उनकी रस्म नई, न उनकी रीत नई।
यूं ही खिलाए हैं, हमने आग में फूल
न उनकी हार नई, न अपनी जीत नई।

चारागर को चारागरी से गुरेज था
वरना हमें जो दर्द थे वो ला दवा न थे।

अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजे?
और भी दुख हैं ज़माने में मोहब्बत के सिवा,
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा
मुझसे पहली सी मोहब्बत मेरे महबूब न मांग।

दिल ना उम्मीद तो नहीं, नाकाम ही तो है
लंबी है गम की शाम, मगर शाम ही तो है।

वो इंतजार था जिसका ये वो सहर तो नहीं
चले चलो कि वो मंजिल अभी आई नहीं।

देखेंगे हम भी देखेंगे
लाज़िम है कि हम भी देखेंगे।

आइये हाथ उठायें हम भी
हम जिन्हें रस्मे-दुआ याद नहीं
हम जिन्हें सोज़े मुहब्बत के सिवा
कोई बुत, कोई खुदा, याद नहीं।

जो गुजर गई हैं रातें
उन्हें फिर जगा के लाएं,
जो बिसर गई है बातें
उन्हें यादों में बुलाएं,
चलो फिर से दिल लगाएं
चलो फिर से मुस्कुराएं।

मता ऐ लोह ओ कलम छीन गई तो क्या गम है
कि खून ऐ दिल में डुबो ली हैं उंगलियां मैंने
जबां पे मोहर लगी है तो क्या कि रख दी है
हर हल्का ए जंजीर में जबां मैंने।''

फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ जैसे क्रांति यानी इंकलाब के दीवाने थे और वे इंकलाब के इस कदर दीवाने थे कि वे इंकलाब को अपना महबूब मांगते थे। अपने महबूब यानी जनकल्याणकारी इंकलाब के बारे में उनका यह मशहूर शेर देखिए। इसे सुन और पढ़कर कौन फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ का फैन न हो जायेगा? यही उनकी अमर और चिरंजीवी क्रांतिकारिता का सबसे बड़ा राज है।

वो तो वो हैं तुम्हें भी हो जाएगी उल्फत मुझसे
एक नजर मेरा महबूब- ऐ- नजर तो देखो।

बिरसा मुंडा : जनजातीय चेतना के अग्रदूत

– कृष्ण कायत

भारत का इतिहास अगर जीवन की दृष्टि से देखा जाए, तो उसमें मिट्टी, जंगल, नदी और पहाड़ों की महक बसती है। इसी प्रकार भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास केवल दिल्ली, मुंबई या कोलकाता जैसे महानगरों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसके पन्नों में भारत के वनवासी, ग्रामीण और आदिवासी समाज के भी अमर योगदान दर्ज हैं। इन्हीं धरती की संतानों में एक नाम आता है – बिरसा मुंडा।

बिरसा मुंडा का जन्म 15 नवंबर 1875 को झारखंड के उलीहातु गाँव (खूँटी ज़िला) में एक साधारण किसान परिवार में हुआ। उनका परिवार उन हज़ारों आदिवासी परिवारों में से था, जिनकी भूमि अंग्रेज़ों और जमींदारों के अत्याचार से छीनी जा रही थी। बचपन से ही बिरसा ने गरीबी, अन्याय और शोषण को बहुत नज़दीक से देखा। बिरसा मुंडा ने जनजातीय समाज को अंग्रेज़ी शासन और सामंती शोषण के विरुद्ध संगठित कर स्वतंत्रता और आत्मसम्मान की मशाल जलायी।

स्कूल में पढ़ते समय उन्होंने मिशनरियों की गतिविधियाँ देखीं, जो आदिवासियों के धर्म और संस्कृति को बदलने का प्रयास कर रही थीं। यह बात बिरसा को गहराई से चुभी।



उन्होंने शिक्षा तो प्राप्त की, पर जल्द ही यह निर्णय लिया कि वे अपने समाज की पहचान और संस्कृति को बचाने के लिए संघर्ष करेंगे।

एक साधारण परिवार से निकला यह युवा न केवल जनजातीय समाज का उद्धारक बना, बल्कि उस आवाज़ का प्रतीक भी बना जिसे सदियों तक दबाया गया। बिरसा ने अपने जीवन में यह सिखाया कि "धरती हमारी माँ है, इसे बेचा नहीं जा सकता।" उन्होंने यह बात उस समय कही थी जब अंग्रेज़ी शासन ने जंगलों को सरकार की संपत्ति घोषित कर आदिवासियों को उनकी ही भूमि से बेदखल करना शुरू किया था। दुख की बात यह है कि आज़ादी के अठहत्तर साल बाद भी, वही इतिहास एक नए रूप में दोहराया जा रहा है।

आज झारखंड, छत्तीसगढ़, ओडिशा, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात और उत्तर-पूर्व के राज्यों में रहने वाले करोड़ों आदिवासी जिन जल, जंगल और जमीन पर पीढ़ियों से निर्भर रहे हैं, उनसे वही अधिकार आज धीरे-धीरे छिनते जा रहे हैं। आंकड़े बताते हैं कि भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 8.6 प्रतिशत यानी करीब 11 करोड़ लोग अनुसूचित जनजातियों से आते हैं, परंतु विकास की योजनाओं, खनन परियोजनाओं और औद्योगिक विस्तार के नाम पर करीब 60 प्रतिशत विस्थापित लोग इन्हीं समुदायों से हैं। यह एक त्रासदी है कि जिन्हें प्रकृति का संरक्षक माना गया, आज वही अपने ही घर से बेघर किए जा रहे हैं।

छत्तीसगढ़ के बस्तर, झारखंड के सरायकेला-खरसावां, ओडिशा के कालाहांडी, सुंदरगढ़ और कंधमाल, महाराष्ट्र के गढ़चिरौली और गुजरात के डांग जैसे इलाके इस अन्याय के साक्षी हैं। वहाँ के जंगलों के नीचे छिपे लौह अयस्क, बॉक्साइट, कोयला और यूरेनियम जैसे खनिज अब "राष्ट्रीय संसाधन" के नाम पर कॉर्पोरेट कंपनियों को लीज पर दिए जा रहे हैं। इन परियोजनाओं के लिए जब आदिवासी अपने खेत, गाँव और देवस्थलों की रक्षा में खड़े होते हैं, तो उन पर "विकास-

विरोधी'', ''अवरोधक'' या यहाँ तक कि ''नक्सली'' होने का ठप्पा लगा दिया जाता है।

बस्तर का सच इसका ज्वलंत उदाहरण है। जहाँ एक ओर सरकार दावा करती है कि वह विकास और शांति लाना चाहती है, वहीं दूसरी ओर गाँवों को खाली कराया जा रहा है, लोगों को जबरन पुनर्वास शिविरों में भेजा जा रहा है, और जो अपनी ज़मीन बचाने की बात करता है, उसे जेल में डाल दिया जाता है। झारखंड में पत्थलगड़ी आंदोलन इसी चेतना की आधुनिक अभिव्यक्ति थी – जहाँ आदिवासियों ने संविधान की पाँचवीं अनुसूची के अधिकारों का सहारा लेकर कहा कि हम अपनी जमीन पर अपने कानून से चलेंगे। लेकिन सत्ता ने इसे विद्रोह का नाम देकर दमन का रास्ता चुना।

बिरसा मुंडा का यही तो सपना था – कि उनका समाज आत्मसम्मान से जिए, अपनी संस्कृति और भूमि की रक्षा करे। उन्होंने ''उलगुलान'' यानी महान हलचल का आह्वान किया था ताकि शोषण की जंजीरें टूट सकें। किंतु आज जब विकास के नाम पर पहाड़ काटे जा रहे हैं, नदियाँ प्रदूषित हो रही हैं और जंगलों की जगह खदानें उग रही हैं, तो ऐसा लगता है कि बिरसा का अधूरा सपना अब भी हमारे सामने खड़ा है – प्रश्न बनकर, चुनौती बनकर।

सरकारें कहती हैं कि ये परियोजनाएँ देश की प्रगति के लिए हैं, लेकिन यह प्रगति तब खोखली लगती है जब उसके नीचे किसी आदिवासी की पुश्तैनी जमीन दबी होती है। विकास का चेहरा तब विकृत लगता है जब किसी बस्ती को उजाड़ कर उसके नाम पर कारखाना या बाँध खड़ा किया जाता है, और मुआवज़ा के नाम पर केवल कागज़ का एक टुकड़ा थमा दिया जाता है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार, देश के खनन इलाकों में पिछले दस वर्षों में 40,000 से अधिक आदिवासी परिवारों का विस्थापन हुआ है, पर उनमें से मुश्किल से 20 प्रतिशत को ही स्थायी पुनर्वास मिला।

बिरसा मुंडा ने अपने जीवन में जो चेतना जगाई थी – आत्मनिर्भरता, एकता और संस्कृति की रक्षा – वही आज इन दमनकारी नीतियों के विरुद्ध आदिवासी समाज की सबसे बड़ी शक्ति है। चाहे झारखंड का नेतरहाट क्षेत्र हो, जहाँ ग्रामीण सेना प्रशिक्षण स्कूल के लिए जंगल बचा रहे हैं; या ओडिशा का नीयामगिरि पर्वत, जहाँ डोंगरिया कोंध समुदाय ने वेदांता कंपनी की बॉक्साइट खदान को रोक दिया – ये सब बिरसा की प्रेरणा के कारण ही संभव हुआ है।

परंतु यह भी सच है कि आज भी उनके नाम पर योजनाएँ बनती हैं, लेकिन उनके आदर्शों की उपेक्षा की जाती है। भारत सरकार ने 2021 में बिरसा मुंडा के जन्मदिन को ''जनजातीय गौरव दिवस'' घोषित किया।

अब हर वर्ष यह दिन आदिवासी समाज के योगदान और उनकी संस्कृति के सम्मान के रूप में मनाया जाता है।

इस अवसर पर पूरे देश में 1000 से अधिक जनजातीय सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। लेकिन आदिवासियों को मुख्यधारा में शामिल करने का अर्थ यह नहीं कि उनकी पहचान मिटा दी जाए। यह देश तभी सच्चे अर्थों में विकसित कहलाएगा जब उसके जंगलों के रक्षक सुरक्षित हों, उसकी धरती के पुत्र सम्मानपूर्वक जीवित रह सकें।

आज की दुनिया में जब पर्यावरण संकट बढ़ रहा है, तब बिरसा मुंडा के विचार हमें याद दिलाते हैं कि विकास केवल इमारतों से नहीं, बल्कि उस धरती से भी मापा जाना चाहिए जो हमें जीवित रखती है। बिरसा मुंडा केवल एक व्यक्ति नहीं थे, वे उस चेतना का प्रतीक हैं जो हमें यह सिखाती है कि प्रकृति, मानवता और न्याय – ये तीनों साथ चलें, तभी सभ्यता टिकेगी।

इसलिए जब भी जंगलों में पेड़ काटे जाते हैं, जब भी किसी आदिवासी गाँव को खदानों के लिए उजाड़ा जाता है, तो ऐसा लगता है जैसे बिरसा हमें फिर से पुकार रहे हों –

''धरती हमारी माँ है, उसकी रक्षा ही सच्चा धर्म है।''

मंडी डबवाली

दिव्या कीर्ति के विचार

''हर विद्यार्थी में आलोचनात्मक सोच विकसित होनी चाहिए। उसे हर गलत बात पर किंतु करना चाहिए। वास्तविक शिक्षा रटंत विद्या न होकर, तथ्यों को समझकर, प्रश्न पूछकर तथा तर्क के आधार पर निष्कर्ष निकालने पर आधारित होनी चाहिए। एक अच्छा नागरिक वही होता है जो संवेदनशील होने के साथ-साथ विवेकपूर्ण निर्णय ले सके।''

''हमें अंधविश्वासों और पाखंडों का दलील के आधार पर विरोधी करना चाहिए। विज्ञानसम्मत सोच, तर्क और प्रमाण समाज की प्रगति के लिए अनिवार्य हैं। बिना प्रश्न किए किसी भी परंपरा या मान्यता को स्वीकार करना समाज को पीछे ले जाता है।''

असल में क्या सच है

–हरजीत सिंह

वैज्ञानिक तथ्य

वैज्ञानिक तथ्य वे सत्य होते हैं जो प्रकृति के नियमों और घटनाओं को समझने के लिए किए गए निरीक्षण, प्रयोग और तर्क पर आधारित होते हैं। ये तथ्य किसी व्यक्तिगत विश्वास, परंपरा या अंधश्रद्धा पर निर्भर नहीं करते, बल्कि ठोस प्रमाणों से सिद्ध होते हैं। विज्ञान का उद्देश्य वास्तविकता को वैसा ही समझना है जैसा वह है, न कि जैसा हम मानना चाहते हैं।

वैज्ञानिक तथ्यों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे परीक्षण योग्य और दोहराने योग्य होते हैं। उदाहरण के लिए– पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है, जिससे दिन और रात बनते हैं। यह तथ्य खगोलीय अवलोकनों और गणनाओं से प्रमाणित है। इसी प्रकार, गुरुत्वाकर्षण का नियम बताता है कि प्रत्येक वस्तु एक–दूसरे को आकर्षित करती है। यह नियम सेब के गिरने से लेकर ग्रहों की गति तक समान रूप से लागू होता है।

स्वास्थ्य और चिकित्सा के क्षेत्र में भी वैज्ञानिक तथ्यों का विशेष महत्व है। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि बैक्टीरिया और वायरस अनेक रोगों के कारण होते हैं और स्वच्छता तथा टीकाकरण से इन रोगों की रोकथाम की जा सकती है। इसी कारण चेचक जैसी घातक बीमारी का उन्मूलन संभव हुआ।

वैज्ञानिक तथ्य स्थिर नहीं होते, बल्कि समय के साथ अधिक स्पष्ट और सटीक बनते जाते हैं। जब नए प्रमाण सामने आते हैं, तो विज्ञान अपने निष्कर्षों में सुधार करता है। यही वैज्ञानिक दृष्टिकोण की शक्ति है। इसके विपरीत, अंधविश्वास बिना प्रमाण के किसी बात को सत्य मानने पर जोर देता है।

दोस्तो ज़िंदगी में हम ऐसी कई बातें सुनते या पढ़ते हैं जिन पर हमें कभी शक या सवाल नहीं होता क्योंकि या तो हमें उनमें कुछ गलत नहीं लगता या वो बात हमें इनती बार बताई गई होती है कि हम उसे सच मान लेते हैं। आज इस लेख में हम कुछ ऐसी ही सच्चाईयों को तथ्यों की कसौटी पर परखेंगे।

मिथक 1 : सूर्य हमेशा पूर्व दिशा में उगता है।

सत्य : वास्तव में, सूर्य न कभी उगता है और न ही अस्त। पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि वह उगता या अस्त होता है। अगर हम इस तथ्य को नज़रअंदाज़ भी कर दें, तो भी इस बात में कोई सच्चाई नहीं है कि सूर्य हमेशा पूर्व दिशा में उगता है। वास्तव में, पृथ्वी का अक्ष सीधा नहीं है, बल्कि सूर्य की ओर 23.5 डिग्री के कोण पर झुका हुआ है। यही झुकाव ऋतुओं का कारण बनता है, लेकिन इस झुकाव का एक प्रभाव यह भी है कि सूर्य हर दिन अपनी स्थिति से थोड़ा ऊपर उठता है। अगर आप एक साल तक हर दिन एक ही जगह पर खड़े होकर उगते सूरज की तस्वीर लें, तो वह आठ के आकार का बनेगा। इसे सौर एनालेम्मा कहते हैं। सूर्य वर्ष में केवल दो दिन (20/21 मार्च और 22/23 सितंबर) पूर्व दिशा से उदय होता है। आप इस घटना की जाँच कम्पास से भी कर सकते हैं।

मिथक 2 : दोपहर के समय सूर्य सीधे सिर के ऊपर होता है।

सत्य : इसमें भी कोई सच्चाई नहीं है।कम से कम उत्तर भारत के लोगों के लिए तो यह कभी सच नहीं हो सकता। पृथ्वी के अक्ष के झुकाव के कारण, सूर्य भूमध्य रेखा से 23.5 डिग्री ऊपर और नीचे के क्षेत्र में, यानी कर्क और मकर रेखाओं के बीच, केवल सीधे ऊपर ही आ सकता है, और वह भी साल में केवल दो दिन। कर्क रेखा पर रहने वालों के लिए यह दिन 20/21 जून है और मकर रेखा पर रहने वालों के लिए यह दिन 21/22 दिसंबर है। इस क्षेत्र के अलावा, पृथ्वी के बाकी हिस्सों में सूर्य कभी भी सीधे ऊपर नहीं आता है। इसकी जाँच करने के लिए, किसी खेत में एक लकड़ी को सीधा खड़ा करें (पारे के पैमाने की मदद से)। आप देखेंगे कि उसकी परछाई पूरे दिन में कभी नहीं मिटती, हालाँकि अगर सूर्य सीधे ऊपर होता, तो उसकी परछाई दिन में एक बार मिटनी चाहिए थी। निर्वासित

मिथक 3 : सूर्य का रंग पीला है।

सत्य : सूर्य का असली रंग सफेद है। पृथ्वी का वायुमंडल अपने प्रकाश से नीली रोशनी बिखेर देता है, और हमारी आँखों तक पहुँचने वाला शेष प्रकाश पीला होता है, यही कारण है कि सूर्य हमें पीला दिखाई देता है। दरअसल, यह पीला रंग पूरे

दिन नहीं रहता। सुबह और शाम के समय सूर्य की किरणों को वायुमंडल से होकर ज़्यादा दूरी तय करनी पड़ती है, इसलिए यह लाल या नारंगी दिखाई देती है।

मिथक 4 : चीन की महान दीवार अंतरिक्ष से दिखाई देती है।

सत्य : यह मिथक इतना लोकप्रिय है कि यह कई स्कूली पाठ्यपुस्तकों में भी मिलता है। कुछ लोग तो यह भी कहते हैं कि यह दीवार चाँद से दिखाई देती है।सच तो यह है कि चीन की महान दीवार अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन (ढ्ढस्स्) से भी दिखाई नहीं देती, जो पृथ्वी से केवल 400 किलोमीटर ऊपर है, जबकि चंद्रमा 385,000 किलोमीटर दूर है। यह मिथक तब गलत साबित हुआ जब चीन के ही अंतरिक्ष यात्री यांग लीवेई ने कहा कि उन्हें अंतरिक्ष से दीवार दिखाई नहीं दे रही थी।

मिथक 5 : आइंस्टीन गणित में फेल हो गए थे।

सच्चाई : यह भी सच नहीं है। आइंस्टीन गणित और विज्ञान में बहुत अच्छे थे। वे अन्य विषयों में भी कमज़ोर नहीं थे, लेकिन उनकी रुचि कम थी। 26 मार्च 2018 को, नोबेल पुरस्कार समिति ने आइंस्टीन का हाई स्कूल का रिपोर्ट कार्ड जारी किया, जिसमें लिखा था, ''एक व्यापक मिथक के विपरीत, अल्बर्ट आइंस्टीन ने हाई स्कूल में गणित में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया था। यह प्रमाण पत्र आइंस्टीन को 17 साल की उम्र में दिया गया था। अंकों में, 6 सबसे ज़्यादा और 1 सबसे कम होता है। यह तस्वीर उसी दिन ली गई थी जिस दिन उन्हें 1896 में उनके ग्रेड मिले थे।'' रिपोर्ट कार्ड के अनुसार, आइंस्टीन को बीजगणित, ज्यामिति, वर्णनात्मक ज्यामिति और भौतिकी में 6 में से 6 अंक मिले। रसायन विज्ञान में भी उन्हें 5 अंक मिले। वास्तव में, इतिहास में भी उन्हें 6 अंक मिले।

मिथक 6 : अंतरिक्ष यात्री पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से बाहर चलते हैं, जिससे वे भारहीन हो जाते हैं।

सच्चाई : जब आप अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन पर अंतरिक्ष यात्रियों को हवा में तैरते हुए देखते हैं, तो यह बात सच लगती है, लेकिन इसमें कोई सच्चाई नहीं है। अगर यह सच होता, तो चंद्रमा हमारी पृथ्वी की परिक्रमा नहीं कर रहा होता। गुरुत्वाकर्षण एक कमज़ोर बल हो सकता है, लेकिन यह लंबी दूरी पर काम करता है। अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष स्टेशन पर इसकी तीव्रता पृथ्वी की सतह पर इसकी तीव्रता से केवल 13 प्रतिशत कम है। अब सवाल यह उठता है कि अगर गुरुत्वाकर्षण है, तो अंतरिक्ष यात्री हवा में क्यों तैरते हैं?इसका कारण यह है कि वे लगातार पृथ्वी की ओर गिर रहे होते हैं लेकिन साथ ही उनकी आगे की गति इतनी तेज़ होती है कि वे पृथ्वी पर गिरने के बजाय उसका चक्कर लगाने लगते हैं। इसे एक उदाहरण से समझते हैं, यदि आप किसी ऊँची जगह पर खड़े होकर पृथ्वी के समानांतर एक पत्थर फेंकते हैं, तो यह कुछ दूर जाकर गिरेगा। यदि आप इसे अधिक बल के साथ फेंकते हैं, तो यह और दूर जाकर गिरेगा। जैसे-जैसे आप बल बढ़ाएंगे, पत्थर की दूरी बढ़ती जाएगी। यदि आप इतना बल लगाते हैं कि यह पृथ्वी से आगे चला जाए, तो गिरने के बजाय यह पृथ्वी का चक्कर लगाने लगेगा, अर्थात यह लगातार गिरता रहेगा लेकिन नीचे नहीं आएगा। रॉकेट यही करते हैं। वे अंतरिक्ष यात्रियों को एक निश्चित कक्षा में इतनी गति से प्रक्षेपित करते हैं कि वे पृथ्वी का चक्कर लगाने लगते हैं। लगातार गिरने के कारण उन्हें गुरुत्वाकर्षण का एहसास नहीं होता है।

मिथक 7 : पूर्ण सूर्य ग्रहण दुर्लभ होते हैं।

सत्य : पूर्ण सूर्य ग्रहण को इस तरह प्रचारित किया जाता है मानो यह कोई बहुत ही दुर्लभ घटना हो। दरअसल, हर दो साल में, पृथ्वी पर कहीं न कहीं, चंद्रमा, सूर्य और चंद्रमा के बीच से होकर गुजरता है, जिससे पूर्ण सूर्य ग्रहण होता है। यह घटना हर पाँच साल में होने वाले चुनावों या हर चार साल में होने वाले ओलंपिक खेलों से भी ज़्यादा बार होती है, लेकिन आप कभी किसी को इन्हें दुर्लभ कहते नहीं सुनेंगे। हाँ, हम कह सकते हैं कि किसी खास स्थान पर पूर्ण सूर्य ग्रहण होने में 50 साल तक लग सकते हैं, लेकिन ओलंपिक खेलों में भी उतना ही समय लग सकता है। इसके अलावा, सूर्य ग्रहण ओलंपिक समिति की तरह किसी स्थान का चुनाव नहीं करता।

कुछ और बातें :

चमगादड़ अंधे नहीं होते, लेकिन वे अंधेरे में इंसानों से बेहतर देख सकते हैं।

बैल लगभग रंग-अंधे होते हैं, इसलिए वे लाल रंग नहीं देख सकते और लाल रंग से चिढ़ते भी नहीं हैं।

वैज्ञानिक - इसरो, त्रिवेंद्रम 99957 65095

भारत का पूँजीवादः आत्मनिर्भरता का भ्रम और तकनीकी पराधीनता की सच्चाई

-धर्मेन्द्र आज़ाद

एच.सी.एल. (HCL) के सह-संस्थापक अजय चौधरी ने हाल ही में कहा कि भारत में मोबाइल ''बनते'' नहीं, बल्कि ''असेंबल'' किए जाते हैं – पुर्ज़े, चिप और तकनीक चीन से आती हैं, और भारत में बस पेंच कसने का काम होता है। देश की आज़ादी के सात दशकों बाद पूँजीवादी हलकों से आने वाली यह असहज स्वीकारोक्ति भारत की सच्चाई और उसकी विडंबना दोनों को उजागर करती है। इस एक वाक्य में वह सच्चाई समाई है, जिसे भारत का पूँजीपति वर्ग वर्षों से चमकीले नारों और विज्ञापनों के पीछे छिपाता रहा है – कि ''आत्मनिर्भर भारत'' का सपना दरअसल विदेशी तकनीक और पूँजी पर टिकी एक विशाल असेंबली लाइन से ज़्यादा कुछ नहीं है।

भारत ने सात दशक पहले लम्बे संघर्ष के बाद राजनीतिक स्वतंत्रता तो हासिल कर ली, पर आर्थिक और वैज्ञानिक स्वतंत्रता कभी नहीं पा सका। स्वतंत्रता के बाद बनी आर्थिक-राजनैतिक व्यवस्था ने न तो जातिवाद और पितृसत्ता को समाप्त सामंती ढाँचों पर प्रहार किया, न ही देश के संसाधनों को कुछ गिने-चुने पूँजीपतियों के चंगुल से मुक्त कराया। विज्ञान और तर्कशीलता को समाज की दिशा बनाने की बजाय, सत्ता ने औपनिवेशिक नौकरशाही को ही नया नाम दे दिया। कहने को ''योजना आयोग'' बना, ''पंचवर्षीय योजनाएँ'' बनीं, लेकिन तकनीकी आत्मनिर्भरता की रीढ़ कभी खड़ी नहीं की गयी।

1950 के दशक में जब भारत को औद्योगिक और वैज्ञानिक क्रांति की दिशा में बढ़ना चाहिए था, तब पूँजीपति वर्ग ने आसान और तात्कालिक लाभ का रास्ता चुना। विज्ञान और अनुसंधान को दीर्घकालिक विकास और आत्मनिर्भरता का आधार बनाने के बजाय, उसे सरकारी औपचारिकता बना दिया गया। इसी दौर में बनीं संस्थाएँ – वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद (CSIR), रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (DRDO), भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) और भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र (BARC) – सीमित संसाधनों और सीमित राजनीतिक इच्छाशक्ति के साथ काम करती रहीं।

इन संस्थानों ने अपने स्तर पर सराहनीय कार्य किए, लेकिन उन्हें न पर्याप्त संसाधन मिले, न दीर्घकालिक नीतिगत समर्थन। ISRO ने उपग्रह और रॉकेट प्रक्षेपण में सफलता पाई, पर उसके अधिकांश सेंसर और विशेष धातुएँ अब भी यूरोप और अमेरिका से आती हैं। DRDO ने मिसाइलें और रडार बनाए, पर इंजन और ''क्रिटिकल टेक्नोलॉजी'' के लिए रूस और फ्रांस पर निर्भर रहना पड़ता है।

सेमीकंडक्टर (Semiconductor) के क्षेत्र में भारत की स्थिति तो और चिंताजनक है। जब ताइवान, दक्षिण कोरिया और चीन ने तीन दशक पहले ही विश्व-स्तरीय चिप उद्योग खड़ा कर लिया, भारत अब भी योजना और घोषणा के चरण में ही झूल रहा है। गुजरात में बनने वाली चिप फैक्ट्री का तकनीकी साझेदार अमेरिकी Micron और ताइवानी झस्स्ब्ह हैं – यानी "Make in India" का असल अर्थ फिर वही "Buy from Abroad" बन गया।

Rare Earth Metals, जिनसे मोबाइल, मिसाइल, इलेक्ट्रिक वाहनों की बैटरियाँ और सौर पैनल बनते हैं, उनके शोधन में भारत पूरी तरह चीन पर निर्भर है। चीन आज दुनिया के 70 प्रतिशत रेयर अर्थ प्रोसेसिंग पर नियंत्रण रखता है, और भारत, जिसके पास कच्चा खनिज तो है, लेकिन उसे परिष्कृत करने की तकनीक नहीं।

भारत की लगभग सभी बड़ी सुरंग परियोजनाएँ – दिल्ली मेट्रो, मुंबई कोस्टल रोड, ज़ोजिला टनल – विदेशी टनल बोरिंग मशीनों (Tunnel Boring Machines) पर चल रही हैं। ये मशीनें जर्मनी, जापान और चीन से आती हैं। ज़रा सोचिए, अगर कल इन देशों की आपूर्ति रुक जाए तो भारत के बड़े-बड़े प्रोजेक्ट ठप पड़ जाएँगे। ''आत्मनिर्भरता'' की पोल यहीं खुल जाती है – ऊपर भारतीय झंडा, नीचे विदेशी पुर्ज़ों की हकीकत।

भारत ने अंतरिक्ष में झंडा फहराया, लेकिन कंप्यूटर चिप के लिये आज भी विदेशों पर निर्भर है। यह विरोधाभास बताता है कि हमारी ''आत्मनिर्भरता'' वास्तव में आयात-निर्भरता का नया नाम है।

भारतीय पूँजीपति वर्ग की सोच हमेशा ''तुरंत लाभ''

पर टिकी रही है। R&D (Research and Development) में निवेश दीर्घकालिक होता है और लाभ धीरे मिलता है, जबकि विदेशी तकनीक खरीदकर असेंबली करने से तुरन्त मुनाफ़ा आता है। यही ''तत्काल लाभ की मानसिकता'' भारत की वैज्ञानिक रीढ़ को खोखला करती रही है। आज भारत अपने सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का केवल 0.6% अनुसंधान पर खर्च करता है, जबकि अमेरिका 3.4%, चीन 2.4% और दक्षिण कोरिया लगभग 5% खर्च करते हैं। यह आँकड़ा अपने आप में भारत की प्राथमिकता का आईना है – विज्ञान के विकास पर नहीं, प्रदर्शन पर ज़ोर है।

शिक्षा व्यवस्था ने इस प्रवृत्ति को और गहरा किया। IITs और IISc जैसे प्रतिष्ठित संस्थान बने, लेकिन वे नवाचार (Innovation) के केंद्र नहीं बन सके। वे विदेशी कंपनियों के लिए प्रशिक्षित इंजीनियर तैयार करने वाले संस्थान बन के रह गये।

स्कूलों में स्थिति और भी चिंताजनक है। विज्ञान की शिक्षा में प्रयोग और जिज्ञासा की जगह अब पौराणिक कथाओं को ''वैज्ञानिक प्रमाण'' बताकर पढ़ाया जा रहा है। सत्ता के उच्च पदों पर बैठे नेताओं के भाषणों में कहा जाता है कि ''गणेश जी की सूंड प्राचीन प्लास्टिक सर्जरी का उदाहरण है'', ''गाय साँस में ऑक्सीजन छोड़ती है'', और ''पहला विमान भारत में पुष्पक विमान था।'' ये बातें सिर्फ़ हास्यास्पद नहीं, बल्कि उस मानसिकता की पहचान हैं जो समाज को पीछे की ओर धकेल रही है – जहाँ मिथक को प्रयोग पर, और श्रद्धा को तर्क पर प्राथमिकता दी जा रही है।

जब समाज के भीतर वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Scientific Temperament) की जगह आस्था और कल्पना का वर्चस्व होता है, तो पूँजीपति वर्ग और सत्ता दोनों को सुविधा होती है। क्योंकि प्रश्न पूछने वाला नागरिक उनके लिए असुविधाजनक होता है, और सोचने वाला समाज मुनाफ़े की व्यवस्था को चुनौती देता है। इसलिए विज्ञान को हमेशा सीमित, नियंत्रित और पौराणिक कथाओं के अधीन रखा गया – ताकि वह उद्योग का औज़ार बने, स्वतंत्र चेतना का नहीं।

यह स्थिति किसी एक दशक की भूल का परिणाम नहीं है, बल्कि सात दशकों की भारतीय पूँजीवादी व्यवस्था की चारित्रिक विशेषता है। स्वतंत्रता के बाद से ही उद्योगपति वर्ग ने आसान रास्ता चुना – विदेशी तकनीक खरीदो, यहाँ जोड़ो, और "Make in India" का बोर्ड लगा दो। विज्ञान और तकनीक को उन्होंने समाज के उत्थान का माध्यम नहीं, बल्कि निजी लाभ का साधन बनाया।

आज भारत के उद्योग आकार में विशाल हैं, पर आत्मा में निर्भर। विमान इंजन अमेरिका और फ्रांस से आते हैं, मशीन उपकरण जर्मनी से, रेल सिग्नलिंग जापान से, दुर्लभ खनिज चीन से – और दिशा विश्व पूँजी तय करती है।

अजय चौधरी का बयान इस सच्चाई की आधुनिक गूँज है – पूँजीपति वर्ग खुद यह मान रहा है कि भारत में निर्माण नहीं, केवल असेंबली होती है। यह किसी एक कंपनी की नहीं, बल्कि भारतीय पूँजीवादी 'विकास' के मॉडल की सच्चाई है।

भारत के पास प्रतिभा और संसाधन दोनों हैं, लेकिन जब तक विज्ञान पूँजी और मुनाफ़े के अधीन रहेगा, और शिक्षा में प्रयोग की जगह श्रद्धा सिखाई जाएगी, तब तक आत्मनिर्भरता केवल एक नारा ही बनी रहेगी।

हमारे पास ''पेंच कसने वाले'' लाखों हैं, लेकिन ''चिप बनाने वाले'' बहुत कम – और यही 21वीं सदी के भारत की सबसे गहरी तकनीकी और वैचारिक त्रासदी है।

फर्ज

मां-बाप का फर्ज होता है अपने बच्चों को अच्छा पालन-पोषण, शिक्षा, वैज्ञानिक समझ और संस्कार देना। उन्हें जीवन में सही दिशा दिखाना, बुराई से दूर और अच्छाई की ओर ले जाना। माता-पिता अपने बच्चों के पहले अध्यापक होते हैं, इसलिए उनका व्यवहार और आचरण ही बच्चों के जीवन की नींव बनता है। उन्हें बच्चों को सच्चाई, मेहनत, अनुशासन और दूसरों के प्रति सम्मान की भावना सिखानी चाहिए। साथ ही बच्चों के सपनों उनकी जरूरतों को समझकर उनका मार्गदर्शन करना भी उनका कर्तव्य है। मां-बाप का फर्ज केवल सुविधाएं देना नहीं, बल्कि उन्हें जिम्मेदार, आत्मनिर्भर और अच्छे नागरिक बनाना है। सही मां-बाप वही हैं जो अपने खुद के अच्छे आचरण से अपने बच्चों को सही भविष्य का मार्ग बतातें हैं।

वास्तविक आज़ादी

-अजय राणा

कुछ महीने पहले क़रीब 15 साल का एक लड़का हमारे हॉल में काम पे लगा, वह देखने में बच्चा था लेकिन बहुत समझदार था। बचपन में वह मदरसे में एक साल पढ़ा, उसके बाद पढ़ा नहीं। वह टोटली अनपढ़ था लेकिन उसमें आत्मविश्वास बहुत था. वह मेरा नाम लेकर बात करता था।

एक दिन वह मुझसे बोला, ''राणा जी, अगर अल्लाह या भगवा न होता तो किसी को तो शक्ल दिखाता.. वह इतना शर्माता क्यों हैं ?

मैं उसकी बात सुनकर हैरान हो गया, मैंने कहा, ''सदियों पहले कुछ इन्सानों ने दावा किया कि उन्होंने देखा था ''

उसने कहा, ''ऐसे तो मैं भी कह सकता हूँ कि मैंने देखा.. सच मान लोगे क्या ?''

मैंने कहा, ''सदियों पहले कुछ लोगों ने सच मान लिया था. फिर मानने वालों की गिनती बढ़ती गयी और करोड़ों तक पहुंच गयी।''

उसने ठोस लहजे़ में कहा, ''मैं नहीं मानता।''

उससे बात करके पता चला कि वह 13 साल की उम्र में नास्तिक हो गया था, अपने गांव में वह चैलेंज के साथ उस जगह रात को चला जाता था, जहां भूत-प्रेत होने की अफ़वाह होती थी. वह लड़का किसी की प्रेरणा से नास्तिक नहीं बना था, बल्कि अपनी सोच-समझ से बना था।

उस लड़के ने मुझे मेरा बचपन याद दिला था, उसकी उम्र में मैं ऐसी ही बातें करता था।

मैं जिस उम्र में मैं नास्तिक हो गया था, उस उम्र तक मैंने नास्तिक शब्द भी नहीं सुना था।

क़रीब 50-55 कच्चे घरों का बेहद पिछड़ा गांव था, गांव में बिजली भी नहीं थी..

मैं बेहद जिज्ञासु परिवृत्ति का बच्चा था, बड़े लोगों की हर बात ध्यान से सुनता था, मुझे हर बात समझ आती थी लेकिन भगवान और भूत-प्रेत का मामला बहुत उलझा हुआ था, कुछ भी स्पष्ट नहीं हो रहा था।

मैं सोचता रहता कि वे कहाँ रहते हैं ? वे कैसे दिखते हैं ? वे क्या करते हैं ? उनकी शक्तियाँ क्या हैं ? पिछला जन्म, अगला जन्म, स्वर्ग-नरक, किस्मत, जादू-टोना ये सब क्या है ? इस किस्म के कई सवाल थे, जिनका तसल्लीबख्श जवाब नहीं मिल रहा था. किसी को कुछ पता नहीं था, सब सुनी-सुनाई तर्कहीन बातें करते थे.. हर बात पहली बात के उलट थी।

12-13 साल की उम्र में मैं जानना चाहता था कि भगवान क्या है ? मैं धार्मिक तस्वीरों में, धार्मिक स्थानों में भगवान को ढूंढ रहा था, जब नहीं मिला तो मैं भगवान को चैलेंज करने लगा, ताकि वह मेरे सामने आये।

गांव में दो मज़ार थी, जिसको लोग बहुत मानते थे, मैं उनकी बेअदबी करने लगा ताकि कोई तो सामने आये.. लेकिन कोई सामने नहीं आया. भूत-प्रेत ढूंढे तो वे भी नहीं मिले।

अपने सवालों का जवाब ढूंढते-ढूंढते 15 साल की उम्र तक मैं जान गया कि कोई अलौकिक शक्ति नहीं होती.. सब झूठ है.. वहम हैं.. सब मन का खेल है।

उस वक्त तक मुझे लगता था कि ये सच मैंने अकेले ने जाना है...कई साल बाद पता चला कि मेरे जैसे और भी हैं।

फिर मैं मशहूर नास्तिक बन गया, नास्तिकवाद के कारण मेरा किसी से रिश्ता ख़राब नही हुआ.. मैं सबका फेवरिट बना रहा।

हमारे घर में पूजा-पाठ नहीं होता था लेकिन मुझे छोड़कर बाकी सब आस्तिक थे.. मेरे फ़ादर अपने रूम में तीन-चार तस्वीरों के आगे अगरबत्ती जलाते थे, मैंने उनसे कभी नास्तिकवाद की बात नहीं की लेकिन उनको मेरे विचारों का पता था.

एक दिन उन्होंने उन तस्वीरों को गांव के गंदे तालाब में फेंक दिया, और मुझसे आकर कहा, ''तुम सच बोलते हो, कोई भगवान नहीं है।''

मैं हैरान था कि ये क्रांति कैसे हो गयी, उनको गर्व था कि उनका बेटा उनसे ज़्यादा जानता है।

एक कट्टर धर्म के अनपढ़ बच्चे के अंदर जो सवाल पैदा हुए, ऐसे सवाल पढ़े-लिखे लोगों के अंदर मरते दम तक पैदा नहीं होते।

एक बेहद पिछड़े गांव में, अंधविश्वासी लोगों के बीच रहकर भी एक बच्चे के अंदर जो सवाल पैदा हुए, ऐसे सवाल विकसित शहरों में, विकसित समाजों में रहकर भी पैदा नहीं होते।

लोग जिस दिन ऐसे बच्चों जितने समझदार हो जायेंगे, वे अंधविश्वास से मुक्त हो जायेंगे।

एक बच्चे ने जो सच 15 साल की उम्र में जान लिया, उसके फ़ादर ने वह सच 65 साल की उम्र में जाना.. अफ़सोस उन लोगों पे होता है, जो सच को जाने बिना, समझदार हुए बिना ही मर जाते हैं।

झूठा आस्तिकवाद इन्सान को ढोंगी बनाता है, दिमाग़ को कुंठित करता है, आत्मिक बल को कमज़ोर करता है।

जब किसी में नास्तिक होने की प्रक्रिया शुरू होती है तो समझ बढ़ने लगती है, आत्मिक बल पैदा होना शुरू होता है..

शारीरिक ग़ुलामी से मानसिक गुलामी कई गुना बुरी होती है.. झूठ के प्रति आस्था मानसिक गुलामी है..

जीवन की तौहीन मत कीजिये..

अपनी सोच को आज़ाद कीजिये..

आज़ादी के मायने जानिये, आज़ादी अनमोल है...

***

''राजू से राजवीर तक – एक प्रेरणा कथा''

–कृष्ण कायत

कबीर नगर की तंग गलियों में आज की सुबह कुछ अलग ही थी। विद्यालय रिकॉर्ड की सीबीआई जांच हेतु 2014–15 में ड्रॉपआउट हुए विद्यार्थियों का सर्वे करने निकले थे हम। मैं और वरिष्ठ साथी पवन यादव। सूरज धीरे–धीरे सिर पर चढ़ रहा था, और हम किसी ऐसे स्थानीय व्यक्ति की तलाश में थे जो बस्ती के उन बच्चों के घरों तक पहुंचने में मदद कर सके। तभी गली में सीवरेज टैंकी बनवाते हुए किसी परिचित चेहरे पर नज़र ठहर गई – ''अरे! ये तो राजू है इससे पूछते हैं!''

चेहरे पर वही पुरानी मुस्कान, पर अब आंखों में आत्मविश्वास की चमक कुछ और ही थी। उसने मुझे देखते ही खुशी से पुकारा – ''अरे सर! आप यहां?''

राजू ने काम रोक दिया और झट से पास आ गया। जब उसे पता चला कि हम ड्रॉपआउट बच्चों के सर्वे के लिए आए हैं तो बोला, ''चलो सर, मैं दिखाता हूं, जो बच्चे आप बता रहे हैं उन सबने एक समय ही स्कूल जाना छोड़ दिया था।''

हम दोनों कबीर नगर की गलियों में निकल पड़े। चलते–चलते बातचीत पुरानी यादों की तरफ मुड़ गई।

फ्लैशबैक की परतें खुलती गईं...

राजू, या यूं कहें राजवीर, का बचपन अभावों के अंधेरे में बीता। ऐसा परिवार जहां ''शाम का खाना मिल गया तो सुबह की चिंता'' और ''सुबह का पेट भरा तो शाम की अनिश्चितता'' – यही जीवन का क्रम था। पिता मजदूर थे ऊपर से शराबी भी, मां घर संभालतीं, पर गरीबी इतनी गहरी कि स्कूल जाना तो मानो किसी सपने जैसा था।

बचपन से ही राजू ने जीवन का एक ही पाठ सीखा – ''मेहनत।''

थोड़ा बड़ा हुआ तो कभी ढाबे पर बर्तन मांजना, कभी किसी दुकान में सामान ढोना – यही दिनचर्या थी। किशोरावस्था आई तो पेट पालने के लिए उस ज़माने में चलने वाला साइकिल रिक्शा उठा लिया।

पर, उस संघर्ष की धूल में भी उसका आत्मबल चमकता था। सदा मुस्कराने वाला, अपने रिक्शे को रोज धो–चमकाने वाला राजू उस दौर में भी गंदगी या नशे से कोसों दूर था। बस्ती के उस गंदले माहौल में भी वह किसी साफ झरने की तरह निर्मल था।

धीरे–धीरे उसने खच्चर रेहड़ी ली। वक्त के साथ बाजार में वह रेहड़ी चला कर जीवनयापन करने लगा, और हर बार मुझे देखते हुए दूर से हाथ हिलाकर ''नमस्ते सर'' कह निकल जाता। जिंदगी आगे बढ़ती रही, पर राजू का संघर्ष कब सफलता में बदल गया पता ही नहीं था।

आज का दिन – प्रेरणा की पुन: खोज

आज जब मैं उसे फिर मिला, तो उसके घर के बाहर चल रहा निर्माण कार्य देखकर ठिठक गया। पूछने पर मुस्कराते हुए बोला –

''सर, अब अपना घर बना रहा हूं। अब तो वक्त है सिर ऊंचा करके जीने का।''

और जब उसने अपने बच्चों की कहानी सुनाई, तो मन गर्व से भर गया।

वही राजू, जो खुद स्कूल की दहलीज न देख सका, उसने अपनी तीनों संतानों को पढ़ाकर कामयाबी की ऊंचाइयों तक पहुंचा दिया।

बड़ी बेटी ने एम.ए.(इंग्लिश), बी.एड. तक पढ़ाई की और अब अच्छे घर की बहू है।

बड़ा बेटा ओएनजीसी, भोपाल में सरकारी नौकरी कर रहा है। जोकि केवल बाईस वर्ष की उम्र में नौकरी लग गया व अब चौबीस वर्ष का है।

छोटा बेटा बैंक ऑफ बड़ौदा, बठिंडा में नियुक्त हुआ है जो अभी केवल बीस-इक्कीस वर्ष की आयु का है।

कबीर नगर – जहां नशा, अपराध और अनपढ़ता का जाल पसरा है। अधिकतर युवा नशे की गिरफ्त में हैं, दसवीं तक की शिक्षा हासिल करने में भी नाकामयाब हैं, तंगहाली के चलते बचपन से ही दिहाड़ी मजदूरी करने को मजबूर हैं – वहीं से एक ऐसा पिता निकला जिसने अपने बच्चों को न केवल इन बुराइयों से बचाया, बल्कि सफलता के आसमान तक पहुंचा दिया। वर्तमान परिस्थितियों में महंगाई व बेरोजगारी का यह आलम है कि हम पढ़े लिखे साधन संपन्न लोग भी अपने बच्चों के अच्छे भविष्य के लिए, उनके अपने पैरों पर खड़े होने को लेकर चिंतित रहते हैं।

राजू ने सचमुच सिद्ध कर दिया –

– ''मेहनत इतनी खामोशी से करो कि सफलता खुद शोर मचा दे।''

अब वह ''राजू'' नहीं, राजवीर है – अपने नाम का सच्चा अर्थ, ''राजाओं का वीर'', जी कर दिखाने वाला।

आज जब मैं उसके नए मकान की दीवारों को उठते देख रहा था, तो लगा जैसे हर ईंट में उसके संघर्ष की कहानी गूंज रही है।

गरीबी में जन्मे उस बालक ने अपनी हिम्मत, ईमानदारी और कर्मनिष्ठा से जो कहानी लिखी, वह किसी भारत रत्न से कम नहीं।

कबीर नगर की उस धूल भरी गली में, जहां हमने आज अपने सर्वे की शुरुआत की थी – वहीं मुझे एक ऐसा जीवनपाठ मिल गया जो किसी किताब में नहीं मिलता।

''राजवीर की कहानी'' सिर्फ एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि उन तमाम अनदेखे, अनकहे संघर्षशील लोगों की कहानी है – जो अभावों में भी सपनों को मरने नहीं देते।

मंडी डबवाली

ज्ञान का प्रकाशस्तंभ- सुकरात

सुकरात विश्वभर के विद्वानों, दार्शनिकों और न्यायप्रिय लोगों के मन में बसे हुए हैं। उन्होंने अपने भीतर एक ऐसी अनूठी आदत विकसित कर ली थी, जिसका दुनिया के अधिकांश लोग अपने जीवन भर में अहसास नहीं कर पाते। यूनान की क्रिटीयस हुकूमत ने सुकरात के क्रांतिकारी विचारों होने के कारण उन्हें मृत्युदंड दिया था। जब उन्हें जहर दिया जा रहा था, तब वे अपने शिष्यों से बातें करने में मस्त थे। बात करते-करते उन्होंने जहर देने वाले जल्लाद से पूछा, ''इसमें कितना समय लगेगा?''

जल्लाद की आँखों में आँसू भर आए। उसके बगल में बैठे सुकरात के शिष्य क्राइटो ने पूछा, ''सुकरात, आपको मरने की इतनी जल्दी क्यों है?''

सुकरात का उत्तर अत्यंत उल्लेखनीय था। उनका उत्तर था, ''मैं जीवन भर सीखने की आकांक्षा रखता रहा हूँ। अब जब मैं मृत्यु के निकट हूँ, तो मृत्यु को जानने की इच्छा मेरे भीतर जागृत हो रही है।'' अपनी मृत्यु तक, सुकरात अपनी मृत्यु की व्याख्या करते रहे। आत्म-विकास के मार्ग पर चलने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि हम अपने भीतर सीखने, समझने और



जानने की इच्छा विकसित करें। ज्ञान की मशाल प्रज्वलित करके ही जीवन के अंधकारमय कोनों को देखा, समझा और प्रकाशित किया जा सकता है। चाहे सीखने का स्रोत समाज हो, ज्ञान हो, पुस्तकें हों या कुछ और। ये हर कीमत पर सस्ते होतें हैं। एक अच्छे समाज के निर्माण के लिए सीखना समय की आवश्यकता है।

तर्कशील विचारिक-राम गोपाल वर्मा

इन दिनों में नास्तिकता पर एक विवाद छिड़ा हुआ है जिस पर राम गोपाल वर्मा के प्रमुख विचार, उनके स्वभाव, उनकी सोच और समाज, राजनीति, धर्म व सिनेमा पर उनके दृष्टिकोण का विवरण दिया गया है।

राम गोपाल वर्मा भारतीय सिनेमा के सबसे अलग, विद्रोही और निर्भीक फिल्मकारों में गिने जाते हैं। उनकी सोच हमेशा मुख्यधारा की धारणाओं से अलग रहती है। वह अपने खुले और बेबाक विचारों के लिए उतने ही चर्चित हैं जितने अपनी फिल्मों के लिए। वे समाज, धर्म, राजनीति, कला और मानव-स्वभाव को लेकर बेहद तीखी और देखने में ''विवादास्पद'' लगने वाली राय व्यक्त करते हैं।

धर्म और आस्था पर उनके विचार

राम गोपाल वर्मा खुद को आस्तिक नहीं मानते।

उनके विचारों में तर्कवाद और संदेहवादी सोच स्पष्ट झलकती है।

वे मानते हैं कि धर्म लोगों के जीवन में भय पैदा करके उन पर नियंत्रण स्थापित करता है।

अधिकांश धार्मिक मान्यताएँ वैज्ञानिक नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कारणों से उत्पन्न हुई हैं।

चमत्कार और चमत्कारी दावे मानव कमजोरियों का फायदा उठाते हैं।

उनकी यह निर्भीक सोच भारतीय समाज में अक्सर विवाद उत्पन्न करती है, लेकिन वे अपनी राय बदलने के बजाय लगातार उस पर कायम रहते हैं।

राजनीति और सत्ता पर राय

राम गोपाल वर्मा राजनीति को एक ''शक्ति का खेल'' मानते हैं जिसमें भावनाओं के लिए बहुत कम जगह होती है।

उनका मानना है कि सत्ता का उद्देश्य अक्सर जनता का भला नहीं, बल्कि शक्ति प्राप्त करना होता है। नेता जनता से अधिक अपनी छवि और प्रभाव की चिंता करते हैं। वास्तविक राजनीति आदर्शों से नहीं, बल्कि व्यवहारिकता और चालाकी से चलती है। उनके राजनीतिक ट्वीट और टिप्पणियाँ कई बार नेताओं को असहज कर देते हैं।

समाज और मानव स्वभाव पर विचार

उनका मानना है कि मनुष्य मूल रूप से भावनाओं से नहीं, बल्कि इच्छाओं, भय और महत्वाकांक्षाओं से संचालित होता है।

वे कहते हैं कि लोग वही करते हैं जिसे करते समय उन्हें अच्छा लगता है, चाहे वह नैतिक हो या अनैतिक। नैतिकता एक सामाजिक निर्माण है, जो समय के साथ बदलती रहती है। अपराध, हिंसा और शक्ति-प्राप्ति मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ हैं। उनकी फिल्मों में दिखाई देने वाला अपराध-मनोरचना इसी दृष्टिकोण का विस्तार है।

सिनेमा पर उनके विचार

राम गोपाल वर्मा कला को अत्यंत व्यक्तिगत अभिव्यक्ति मानते हैं।

उनके अनुसार फिल्में समाज की नकल नहीं, बल्कि फिल्मकार की सोच का प्रतिबिंब होती हैं।

दर्शकों को खुश करने के लिए फिल्म नहीं बनानी चाहिए; फिल्म निर्माता को खुद को खुश करना चाहिए। सिनेमा में प्रयोग, जोखिम और नवाचार सबसे जरूरी तत्व हैं। ''यथार्थवाद'' और ''कठोर सच'' दिखाना भी कला का एक रूप है, जिसे दर्शक हमेशा स्वीकार नहीं कर पाते।

वे अक्सर कहते हैं कि वे फिल्में ''भीड़'' के लिए नहीं बनाते, बल्कि अपने मन की बेचैनी को अभिव्यक्त करने के लिए बनाते हैं।

विवादों पर उनका दृष्टिकोण

राम गोपाल वर्मा विवादों से कभी डरते नहीं। उनका कहना है कि

''लोगों को मेरी बात पसंद आए या न आए, मैं वही कहूँगा जो मैं सच मानता हूँ।''

उनका मानना है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ यही है कि हर कोई अपनी सोच खुलकर कह सके, चाहे वह लोकप्रिय हो या न हो।

राम गोपाल वर्मा एक तर्कवादी, विद्रोही, स्वतंत्र सोच वाले, निडर और नवाचारी विचारक हैं।

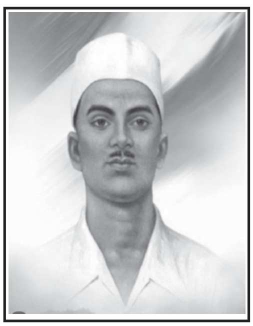
उनकी विचारधारा हमेशा परंपरा को चुनौती देती हैं।

बहुमूल्य स्मृति : शहीद सुखदेव (जन्म: 19 फरवरी 1907), जिन्होंने 23 मार्च 1931 को देश की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों का बलिदान देने वाले क्रांतिकारी नायक शहीद भगत सिंह के साथ फांसी की रस्से को चूमा था।

क्रांतिकारी नेता चंद्र शेखर आजाद (27 फरवरी 1931 को शहीद) को याद करते हुए, उनके साथी शिव वर्मा पाठकों के सामने इन क्रांतिकारी नायकों के जीवन संघर्ष और साथ बिताए क्षणों की यादें प्रस्तुत कर रहे हैं :

शहीद सुखदेव

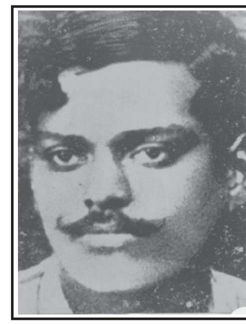
भगत सिंह की तुलना में सुखदेव कम पढ़ते–लिखते थे, लेकिन उनकी स्मृति बहुत तीव्र थी। दर्शन या सिद्धांत की जिन पुस्तकों को अन्य साथी कुछ हफ्तों में पढ़ लेते थे, सुखदेव उन्हें दो दिनों में ही पढ़ लेते थे। वे कभी नोट्स नहीं बनाते थे, फिर भी महीनों बाद भी उनसे उन पुस्तकों के विस्तृत उदाहरण पूछे जा सकते थे जिन्हें उन्होंने सरसरी तौर पर ही पढ़ा था। जेल में बंद साथियों में, भगत सिंह के बाद यदि किसी ने समाजवाद का सबसे अधिक अध्ययन किया था, तो वह सुखदेव ही थे। क्रांतिकारियों के लक्ष्य की सफलता में उनका अटूट विश्वास उनकी फांसी से कुछ दिन पहले गांधीजी को लिखे पत्र से स्पष्ट होता है।



क्रांतिकारियों का लक्ष्य इस देश में समाजवादी लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित करना है। इस लक्ष्य में किसी भी प्रकार के परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं है। मुझे विश्वास है कि आपको यह धारणा नहीं होगी कि क्रांतिकारी तर्कहीन हैं और केवल विनाशकारी गतिविधियों में ही आनंद लेते हैं। हम आपको बताना चाहते हैं कि वास्तव में इसके विपरीत सत्य है। वे प्रत्येक कदम आगे बढ़ाने से पहले अपने आसपास की स्थिति का आकलन करते हैं। वे हमेशा अपनी जिम्मेदारी के प्रति सजग रहते हैं... वह दिन दूर नहीं जब उनके (क्रांतिकारियों के) नेतृत्व में और उनके झंडे तले जनता समाजवादी लोकतंत्र के लक्ष्य की ओर अग्रसर होती दिखाई देगी।

चंद्र शेखर आजाद

भगत सिंह और सुखदेव के हमारे क्रांतिकारी दल में शामिल होने के बाद, सैद्धांतिक प्रश्नों पर अक्सर बहसें होने लगीं। हमारा अंतिम लक्ष्य क्या है? देश की स्वतंत्रता से हमारा क्या तात्पर्य है? भविष्य का समाज कैसा होगा? वर्गहीन समाज का क्या अर्थ है? आधुनिक समाज के वर्ग संघर्ष में क्रांतिकारियों की क्या भूमिका होनी चाहिए? राज्य सत्ता क्या है? ईश्वर और धर्म की उत्पत्ति कहाँ से हुई, आदि। वे इन प्रश्नों पर होने वाली बहसों में खुलकर अपने विचार व्यक्त करते थे।

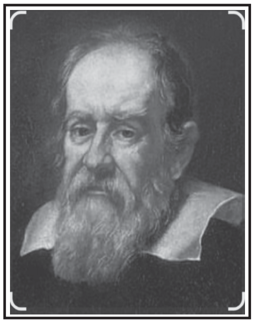


आज़ाद न केवल हमारे कमांडर थे, बल्कि हमारे परिवार के भाई समान थे। वे हर साथी की छोटी से छोटी ज़रूरत का ख्याल रखते थे। वे अपने हर साथी को अपनी आँखों के तारे से भी ज़्यादा प्यार करते थे। यह कहना मुश्किल है कि आज़ाद ईश्वर के अस्तित्व के सवाल पर किसी नतीजे पर पहुँच पाते या नहीं, लेकिन उन्होंने कट्टर नास्तिक भगत सिंह के तर्कों का कभी विरोध नहीं किया, जो ईश्वर के अस्तित्व को नकारते थे। उन्होंने कभी अपने लिए ईश्वर का समर्थन नहीं किया, विरोध करना तो दूर की बात है।

शोषण का उन्मूलन, मानवता की समानता की चर्चा, वर्गहीन समाज की कल्पना और समाजवाद की चर्चा ने उन्हें मोहित कर लिया था। समाजवाद के बारे में जितना वे समझ सके, उतना उन्होंने स्वतंत्रता के उद्देश्य से जीवन के आदर्श के रूप में स्वीकार कर लिया था। वैज्ञानिक समाजवाद की बारीकियों को समझे बिना भी, वे स्वयं को समाजवादी कहने में गर्व महसूस करते थे। यह न केवल आज़ाद पर, बल्कि उस समय हम सभी पर लागू होता था। उस समय तक, भगत सिंह और सुखदेव के अलावा, किसी ने भी समाजवाद का अध्ययन या उस पर विचार नहीं किया था। आज़ाद न केवल दूसरों से गुप्त संगठन के नियमों का पालन करने की अपेक्षा करते थे, बल्कि स्वयं भी उन नियमों का कड़ाई से पालन करते थे।

विज्ञान के अथक मार्ग के माध्यम से :

महान खोजकर्ता : गैलीलियो



15 फरवरी 1564 को पीसा (इटली) में जन्मे गैलीलियो बचपन से ही बहुत बुद्धिमान थे। घर की गरीबी के कारण वे अपनी पढ़ाई पूरी नहीं कर सके। उन्हें गणित में बहुत रुचि थी। कड़ी मेहनत और लगन से वे गणितज्ञ बने। उन्होंने कई गणितीय सिद्धांतों को गलत साबित किया। उन्होंने एक दूरबीन बनाई और गणितीय सिद्धांतों की सहायता से ग्रहों की स्थिति का अध्ययन किया। उन्होंने बताया कि चंद्रमा की सतह पर कई पहाड़ और घाटियाँ हैं। बृहस्पति एकमात्र ग्रह नहीं है, बल्कि इसके साथ कुछ अन्य ग्रह भी हैं। उन्होंने यह भी बताया कि हमारी आकाशगंगा हजारों तारों का समूह है। ब्रह्मांड का केंद्र सूर्य है, पृथ्वी नहीं। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। चूंकि ये खोजें धार्मिक ग्रंथों के विपरीत थीं, इसलिए धार्मिक कट्टरपंथियों को गैलीलियो की बातें स्वीकार्य नहीं हुईं। उन्हें चेतावनी दी गई और चुप करा दिया गया। लेकिन जब उनके द्वारा खोजे गए सत्यों की पुस्तक प्रकाशित हुई, तो उनके खिलाफ अदालत में मुकदमा दायर किया गया। गैलीलियो से कहा गया कि यदि वे स्वीकार कर लें कि पुस्तक में लिखी बातें गलत हैं, तो उन्हें क्षमा कर दिया जाएगा। लेकिन उन्होंने अदालत में कहा कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। सत्य की खोज और उसे बोलने के कारण उन्हें कारावास की सजा सुनाई गई। 1637 में जब वे जेल से रिहा हुए, तो उनकी दृष्टि पूरी तरह से चली गई थी। 8 जनवरी, 1642 को उनका निधन हो गया। गैलीलियो ने अपना पूरा जीवन सत्य की खोज और उसे सिद्ध करने में समर्पित कर दिया। इसके फलस्वरूप उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उनकी खोजें विश्व के समक्ष सत्य सिद्ध हुईं। अपनी खोजों से उन्होंने मानवता के मार्ग को प्रकाशित किया।

-यशपाल

प्रकाश का नायक : सावित्रीबाई फुले

(जन्म 3 जनवरी 1831)



ज्ञान को प्रकाश का स्तंभ बनाओ ताकि अज्ञानता का अंधकार दूर हो सके। सावित्री बाई फुले का जीवन इसका उदाहरण है, जिन्होंने जीवन भर इस आदर्श को अपनाया। समाज के मार्ग को रोशन करने वाले लोग लाखों कठिनाइयों के बावजूद अपने लक्ष्य तक पहुँच जाते हैं।

सावित्री बाई को उनके समाज सुधारक पति ज्योति राव फुले ने घर पर ही शिक्षा दी थी। ज्योति राव ने ही उन्हें शिक्षिका बनने के लिए प्रेरित किया था। सावित्री बाई को भारत की पहली महिला शिक्षिका और महिला मुक्ति आंदोलन की पहली नेता माना जाता है। उन्होंने महिलाओं की शिक्षा के लिए अथक परिश्रम किया। 1848 में उन्होंने पुणे में पहला महिला विद्यालय स्थापित किया। इसके बाद उन्होंने ऐसे 5 और विद्यालय खुलवाए। उस समय ब्रिटिश सरकार की शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य ऐसे क्लर्क तैयार करना था जो दिखने में तो भारतीय हों लेकिन सोच में अंग्रेज़ हों। इसलिए उन्होंने शिक्षा में वैज्ञानिक शिक्षा को शामिल नहीं किया। सावित्री बाई ने प्राथमिक स्तर पर ही वैज्ञानिक शिक्षा को शामिल करने पर ज़ोर दिया। जब वे लड़कियों को पढ़ाने जाती थीं, तो लोग उन पर कीचड़, गंदगी और गोबर फेंकते थे। लेकिन उन्होंने लोगों की परवाह किए बिना अपने मिशन के प्रति अटूट निष्ठा दिखाई। 1890 में ज्योति राव फुले के निधन के बाद, सावित्री बाई ने उनके अधूरे सपनों को पूरा करने का संकल्प लिया। उन्होंने बाल विवाह, छुआ-छूत, जातिवाद और विधवा विवाह पर प्रतिबंध जैसी बुराइयों के खिलाफ एक अनुकरणीय संघर्ष किया। 1897 में महाराष्ट्र में फैली भयानक प्लेग महामारी में रोगियों की सहायता करते हुए, 10 मार्च 1897 को उसी बीमारी से उनकी मृत्यु हो गई। सावित्री बाई फुले, एक समाजसेवी, कवयित्री और महिलाओं एवं दलितों की आवाज, ने ज्ञान और चेतना के प्रसार के लिए संघर्ष किया और बहुमूल्य कार्य किया, जो हमारे लिए प्रेरणा और एक सबक है।

जीवन शैली

–प्रवीन जंड वाला

कुछ समय पहले, फाजिल्का के एक सीमावर्ती गाँव में तर्कशील यूनिट गुरुहरसहाय के पास एक मामला आया। परिवार के एक रिश्तेदार ने हमसे संपर्क किया और बताया कि घर में हो रही घटनाओं से पूरा परिवार बहुत परेशान है। घर का मुखिया, जो कि दर्जी का काम करता है और दिन-रात मेहनत करके घर का खर्च चलाता है। अच्छे-भले परिवार को पता ही नहीं क्या हो गया। वे आपस में बहुत कड़वा व्यवहार करते हैं। बेतुकी बातें करते हैं। बात-बात पर झगड़ते हैं। उनकी परेशानी का कारण तो समझ में आता है। लेकिन घर में हो रही घटनाएँ समझ से परे हैं। जिस काम से घर की रोटी और दूसरे खर्च चलते हैं, उसमें रुकावट पैदा हो गई ।

हमने उनके इस मसले को सुलझाने के लिए छुट्टी का एक दिन तय कर लिया। निश्चित दिन पर मैं, मास्टर जगजीत और एक अन्य साथी पीड़ित परिवार के घर पहुँचे। घर पहुँचकर देखा कि पूरे घर के आंगन में जले हुए कपड़े, बिस्तर, कंबल आदि बिखरे पड़े थे। पूरा परिवार डरा हुआ था। वे इतने डरे हुए थे कि हमारे पास बैठने से भी कतरा रहे थे। चाय-पानी पीने के पश्चात हमने परिवार का माहौल हल्का करने के लिए कुछ देर इधर-उधर की बातें कीं। परिवार में मुखिया, उसकी माँ, पत्नी, दो बच्चे और एक बहन थे। पूछताछ में पता चला कि घर में यह सिलसिला करीब एक साल से चल रहा था। शुरुआत में तो सिर्फ़ पुराने, अनुपयोगी कपड़े ही कटते थे। धीरे-धीरे ये घटनाएँ बढ़ने लगीं। परिवार के मुखिया ने बताया कि शुरुआत में सिर्फ़ मेरी पत्नी के कपड़े ही कटते थे। फिर धीरे-धीरे मेरे बच्चों समेत पूरे परिवार के कपड़े काटे जाने लगे। हमने अपनी ओर से बाबाओं और तांत्रिकों से संपर्क किया और मसले को हल करने के प्रयास करते रहे। हल होने की बजाय हमारी समस्या और बढ़ती गई। कपड़ों को आग भी लगने लगी। हमारे पड़ोसियों और रिश्तेदारों की सलाह पर कई बाबाओं और तांत्रिकों के पास गए। सबने हमें बताया कि भूत-प्रेत का साया है और यह भी कहा कि हमने पितरों के कपड़े दान नहीं किए। इसीलिए वे परिवार को परेशान कर रहे हैं। तांत्रिकों की सलाह पर हमने अपने पितरों के कपड़े, बिस्तर और बिछावन भी दान दे दिए, लेकिन घटनाएँ रुकीं नहीं। घर का मुखिया दुखी मन से रुक-रुक कर हमें बता रहा था। कई बार वो अपनी कही हुई बात को भी बदल कर बताने लग जाता । उसके व्यवहार और बोलचाल से पहली नज़र में ही वो मानसिक रूप से बीमार लग रहा था।

जब मुखिया की पत्नी को बुलाया गया तो उनकी हालत भी अपने पति जैसी ही लग रही थी। घटनाओं की जानकारी देते हुए उसने बताया कि शुरुआत में घटनाएं सिलाई वाले कमरे में होने लगी थीं। बच्चों के पिता और कपड़े सिलने वाले लोगों के अलावा वहां कोई और नहीं आता था। एक महीने तक तो उन्होंने हमें बताया भी नहीं। कैंची से कपड़े कटने से शुरू हुआ काम अब संदूक में रखे कपड़ों की आग तक पहुंच गया है। अब यह आग बिस्तरों तक भी पहुंच गई है। रात में सोते समय अचानक कभी किसी के बिस्तर से धुआं निकलने लगता है और कभी किसी दूसरे के। घर में रहते हुए हर समय मौत नजर आती है, पता नहीं कब और किस दिशा से आग लग जाए। अब घर में कोई भी बिस्तर सही सलामत नहीं बचा था।

परिवार का एकमात्र कमाने वाला घर का मुखिया था। वह दर्जी का अच्छा काम करता था। रहस्यमय घटनाओं ने आय का एकमात्र स्रोत भी छीन लिया। नए कपड़े और नए बिस्तर लाने का कोई साधन नहीं बचा। अंत में, पड़ोसियों और रिश्तेदारों की मदद से कुछ कपड़े और बिस्तर की व्यवस्था की गई। इसी दौरान, परिवार ने हमदर्दों की सलाह पर अलग-अलग समय में कई अन्य तांत्रिकों से संपर्क किया, लेकिन घटनाएं कम होने के बजाय बढ़ती जा रही थीं। अब सिलाई के लिए दुकान पर आने वाले कपड़े और दुकान का सामान भी गायब होने लगा। परिवार मान रहा था कि इन सब घटनाओं के पीछे किसी देवी शक्ति का हाथ है।

मुखिया के बच्चों और बहन ने हमारे सवालों का जवाब डरते-डरते दिया। सभी सदस्यों से बात करने के बाद शक की सुई मुखिया की ओर घूम गई। हमारे साथ काम करने वाले एक तर्कशील साथी का तर्क था कि शुरुआत की घटनाएँ घर के मुखिया की मौजूदगी में होने लगीं हैं । उसने शुरू में घटनाओं पर ध्यान ही नहीं दिया। उसकी पत्नी इतनी साहसी और

निर्भीक नहीं लगतीं। हमें मुखिया को केंद्र में रखकर घटनाओं को सुलझाने के बारे में सोचना चाहिए। मेरे इलावा, मेरे दोनो साथी मामले को सुलझाने के लिए इस तर्क से सहमत थे।

परिवार के दर्जी मुखिया की पत्नी जो बिल्कुल सामान्य लग रही थी। मेरा शक उसकी तरफ जाने लगा लेकिन मेरे दोस्त कहने लगे कि इस बेचारी को तो कुछ भी पता नहीं है, वो ऐसा कदम कैसे उठा सकती है। मुखिया से दोबारा बात करने पर पता चला कि ऐसी घटनाएँ उसके ससुराल वाले घर में भी एक-दो बार हो चुकी थीं और ये भी पता चला कि ये घटनाएँ तब घटित हुईं जब उसकी पत्नी अपने मायके में गई हुई थी। हमारा शक और पुख्ता हो गया और हमने उसकी पत्नी से दोबारा बात की। उसने जो बताया उससे दोनों के बीच की उलझी हुई गाँठ साफ़ दिखाई दे रही थी।

सबसे पहले, हमने घर के मुखिया की बातों की दोबारा जाँच की। उसकी अपनी स्थिति और आर्थिक तंगी के आधार पर उस पर शक करने का तर्क सही नहीं निकला। घर की आय का एकमात्र स्रोत वही था, घर को बर्बाद करने के लिए वो ऐसा कदम कैसे उठा सकता था।

फिर हमने मुखिया की पत्नी को विश्वास में लिया और बातचीत शुरू की। घर की खराब हालत का हवाला देते हुए हमने उनसे समस्या के समाधान में सहयोग करने को कहा। थोड़ी देर बातचीत करने के बाद, वह मान गई और बताने लगी कि ये सब घटनाएँ माता रानी की नाराजगी से होती हैं। हमें बुज़ुर्गों से पता चला कि इस घर की दिवंगत माता रानी अपने कपड़े माँगती हैं। उसने बताया कि जब भी परिवार के लिए नए कपड़े खरीदे जाते हैं, तो दिवंगत माता रानी के लिए सूट नहीं खरीदा जाता। मैं बार-बार कहती हूँ कि कृपया अपनी माता रानी का सूट भी ले आओ। मैं उनके नाम का सूट पहन लूँगी। लेकिन इस घर में मेरी कोई नहीं सुनता।

पूरा मामला समझने के लिए उनकी बेटी, जो सातवीं कक्षा में पढ़ती थी, उसने घर के अंदर की कहानी बताई। माँ, दादी से मिले पुराने सूट पहनकर गुज़ारा करती हैं। हमने मुखिया की पत्नी को फिर बुलाया और बताया कि हमें आपका पूरा मामला समझ आ गया है। वो अपने पुराने सूट सिर्फ़ इसलिए काटती थी ताकि नया सूट ले सके। लेकिन जब उसे सूट नहीं मिला, तो गुस्से में उसने बाकी सदस्यों के कपड़े काटने शुरू कर दिए। उसने अपने मायके वालों को सबक सिखाने के लिए वहाँ के कपड़ों का आग लगा दी। जिन्होंने हर छह महीने में उसके लिए सूट बनाना बंद कर दिया था।

हमने कहा, चलो मान लेते हैं कि वो दिवंगत माता रानी अब हमारे सामने बैठी है। हालाँकि उसके साथ भेदभाव पूरी तरह से ग़लत है। लेकिन उसने जो तरीका अपनाया है वो भी तो सही नहीं है। अगर वो भेदभाव बंद हो जाए, तो क्या वो ऐसी घटनाओं को रोकने का वादा करेगी? उसने सिर झुकाकर सहमति में सिर हिलाया।

हमारा तरीका सही साबित हुआ। हमने उसके साथ हो रहे भेदभाव को रोकने की ज़िम्मेदारी ली। उसने भी माना कि घर में अब कोई रहस्यमयी घटना नहीं होगी। हमने पूरे परिवार को बिठाकर इस बारे में बात की और कहा कि घर में ऐसी घटनाओं को हमेशा के लिए रोकने के लिए घर के सभी सदस्यों के साथ समान व्यवहार करना होगा। किसी के साथ भी भेदभाव पूरी तरह से बंद करना होगा। अब कपड़े कटने और कपड़ों में आग लगने की बात ही ले लीजिए!

क्या नए कपड़े बनाने का सिद्धांत परिवार के सभी सदस्यों पर लागू होता है? आपने अनेकों बाबाओं और तांत्रिकों को मुंह मांगे पैसे दिए। लेकिन आपने परिवार के किसी भी सदस्य के नाम पर उसके लिए सूट बनाने की ज़हमत नहीं उठाई! परिवारों में ऐसा भेदभाव अक्सर बड़ी समस्याएँ पैदा कर देता है। यह सुनकर परिवार का मुखिया शर्मिंदा हुआ। हमने यह सुनिश्चित करने की ज़िम्मेदारी ली कि भविष्य में परिवार में कपड़े जलने की कोई घटना न घटे और मुखिया को परिवार में भेदभाव बंद करने का सुझाव दिया। जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। हमने यह भी सुझाव दिया कि वह अगले दिन से कपड़े सिलने का काम फिर से शुरू कर दें। हमने परिवार के अन्य सदस्यों को भी अपने खाली समय में इस काम में हाथ बँटाने के लिए प्रोत्साहित किया। कुछ दिनों के पश्चात, वो व्यक्ति फाजिल्का के रेलवे स्टेशन पर मुझे मिला। उसके चेहरे पर संतुष्टि साफ़ झलक रही थी। मैंने पूछा, तो उसने कहा, ''साहब, मेरा सिलाई का काम अब बहुत अच्छा चलने लगा है। अब हम दोनों साथ मिलकर काम करते हैं। परिवार भी घर में खुशी से रहता है। आपने न सिर्फ़ समस्या का समाधान किया है, बल्कि हमें जीने की राह भी दिखाई है। हम परिवार, रिश्तेदारों और पड़ोसियों के साथ मिलकर रहने और एक-दूसरे के काम आने लगें हैं।''

आयोजन प्रमुख, ज़ोन फाजिल्का
मोबाइल : 98157 30432

भोजन संबंधी अंधविश्वास

-डॉ श्याम सुंदर दीप्ति

विज्ञान के आगमन के साथ, अंधविश्वास कम होने चाहिए थे, क्योंकि विज्ञान का मूलमंत्र है – 'परीक्षण द्वारा पुष्टि'। लेकिन विज्ञान के कुछ उपकरणों का प्रयोग अंधविश्वास को बढ़ाने के लिए किया जा रहा है। पहले टीवी यह काम कर रहा था और अब सोशल मीडिया ने अंधविश्वास फैलाने में अपनी मज़बूत उपस्थिति दर्ज कराई है।

स्वास्थ्य एक ऐसा मुद्दा है जो हर व्यक्ति से जुड़ा है, और दूसरी ओर आधुनिक महंगी उपचार प्रणाली होने के कारण, इलाज के लिए छोटे-छोटे टोटके लोगों के मन को बहुत प्रिय लगतें हैं। हर व्यक्ति स्वयं उन्हें समर्पित भाव से अपनाता है और दूसरों के कल्याण के बारे में इनके प्रयोग के बारे में सोचता है, और उसे दूसरों तक इनको पहुँचाना भी अपनी जि़म्मेदारी समझता है।

कुछ आम भ्रांतियाँ :

डेंगू बुखार के दौरान बकरी का दूध/कीवी फल/ पपीते के पत्ते : पिछले कुछ वर्षों से हमारे देश में डेंगू बुखार ने काफ़ी तेज़ी पकड़ी है और वैसे भी 10-15 साल पहले यह एक नई बीमारी थी। इस तरह, नए-नए लक्षण लेकर नई बीमारियाँ सामने आती रहती हैं। इसके अलावा, पिछले कुछ वर्षों में आयुर्वेद इलाज प्रणाली के प्रचलन ने भी इस दिशा में कई तरह के भ्रम पैदा किए हैं।

बकरी का दूध/कीवी फल/पपीते के पत्ते या ऐसी ही अन्य प्रचलित अवधारणाएँ इसी पर आधारित हैं कि ये सभी खाद्य पदार्थ, शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को मज़बूत करते हैं। ये सभी खाद्य पदार्थ निश्चित रूप से एक अच्छे आहार का हिस्सा माने जा सकते हैं, लेकिन ये किसी भी तरह से दवाई का विकल्प नहीं हैं।

बकरी के दूध में एलडीएल (खराब कोलेस्ट्रॉल) को कम करने की क्षमता होती है, इसमें कैल्शियम की उच्च मात्रा होती है जो हड्डियों को मज़बूत बनाता है। यह आसानी से पच जाता है और पाचन क्रिया को बेहतर बनाता है। लेकिन डेंगू बुखार में इसकी भूमिका कहीं भी सिद्ध नहीं हुई है। पपीते के पत्तों में वास्तव में एंटीऑक्सीडेंट की मात्रा अधिक होती है। इनका काम सूजन कम करना, पाचन क्रिया में सुधार, प्रतिरक्षा प्रणाली को मज़बूत करना आदि है।

डेंगू बुखार में एक मुख्य समस्या यह है कि रक्त में मौजूद प्लेटलेट्स कम हो जाते हैं। ये आमतौर पर लगभग दो लाख होते हैं। डेंगू में, अगर ये 20,000 से कम हों, तो ये खतरनाक हो सकते हैं। इसके उचित उपचार में, ये रक्त कण दिए जाते हैं। लेकिन न तो बकरी का दूध और न ही पपीते के पत्ते यह काम कर सकते हैं। ये कुछ हद तक तुरंत आराम पहुँचाते हैं और उसमें भी पपीते के पत्ते ज़्यादा असर करते हैं। लेकिन ज़रूरत के मुताबिक नहीं। दूसरे शब्दों में, इन पर निर्भर नहीं रहा जा सकता।

कीवी फल में विटामिन सी, विटामिन के, फोलिक एसिड और अन्य एंटीऑक्सीडेंट गुण होते हैं। यह एक लाभकारी फल है।

दूसरे शब्दों में, ये सभी ऐसी चीज़ें हैं जिनका रोज़ाना इस्तेमाल होता है, इनसे भी ज़्यादा हमारे मसाले और जड़ी-बूटियाँ जैसे लौंग, दालचीनी, अदरक, लहसुन, अजवाइन आदि भी फायदेमंद हैं। इनका रोज़ाना इस्तेमाल करके इनका फ़ायदा उठाना चाहिए।

होता क्या है? जब ऐसी खबरें फैलती हैं, तो हम मौजूदा अच्छे इलाज को छोड़कर, इन पर ज़्यादा भरोसा करने लगते हैं। अगर हमें इनका इस्तेमाल करना भी पड़े, तो इन्हें व्यवस्थित रूप से चल रहे, परखे हुए उपचार के साथ जोड़ा जा सकता है, बजाय इसके कि वैज्ञानिक उपचार को छोड़कर, आँख मूँदकर इनका पालन किया जाए।

आयुर्वेद और आहार-विहार के बारे में प्रचलित मान्यताएँ : आयुर्वेद हमारे देश में विकसित हुई एक उपचार पद्धति है। लेकिन अगर हम बारीकी से देखें, तो उपचार पद्धति के साथ-साथ इसमें बहुत कुछ ऐसा भी है, जिसके इस्तेमाल से स्वस्थ रहा जा सकता है, यानी यह रक्षा-तंत्र के ज़्यादा करीब है। जब हम जड़ी-बूटियों, मसालों और अन्य औषधीय पौधों की बात करते हैं, तो इन्हें सिर्फ़ इलाज से ज़्यादा, शरीर की दैनिक ज़रूरत माना जाता है, और इन्हें उसी नज़रिए से देखा, समझा और इस्तेमाल किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, क्षेत्र के पदार्थों के बारे में सीखते हुए, हमने लहसुन की बात की, उदाहरण के लिए, प्रदूषण से बचाव के लिए हमने लाल मिर्च, अजवाइन, अदरक की बात की, खांसी से बचाव के लिए हमने मुलेठी या अन्य जड़ी-बूटियों की बात की, तो

इनका रोज़ाना इस्तेमाल बीमारी के दौरान सुरक्षा और आराम देता है। ये उस तरह के उपचार नहीं हैं जिनकी बीमारी के दौरान ज़रूरत होती है।इसी तरह, खाद्य पदार्थों के बारे में भी कुछ बातें प्रचलित हैं। उन वस्तुओं को खाने के समय (सुबह, शाम, रात) और उनके प्रभाव के बारे में भी बताया गया है।

आयुर्वेदिक प्रणाली मनुष्य की बुनियादी समझ, सामान्य उपयोग और समझ के अनुसार विकसित हुई है। उस समय इस प्रणाली में प्रयोगशाला परीक्षण प्रणाली नहीं थी। परीक्षण का एक और तरीका यह है कि इसके प्रयोग से खांसी ठीक हो गई, पेट दर्द भी दूर हो गया और साथ ही इसे कई लोगों पर आजमाया गया और सभी पर कारगर साबित हुआ। तब इसे प्रमाण मान लिया जाता है।

लेकिन एक समस्या यह है कि ऐसे प्रमाण सौ प्रतिशत सही नहीं होते। लेकिन अब जब हमारे पास बहुत प्रभावी तरीके हैं जो हमें बीमारी का पता लगाने और समझने में सक्षम बनाते हैं और दवाओं के प्रभाव को भी परखते हैं, तो हमें जहाँ भी ऐसे तरीके प्रचलित हैं, उनका परीक्षण करना चाहिए और स्वास्थ्य प्रणाली में उपयोगी सूत्रों को शामिल करना चाहिए और उन सूत्रों को त्याग देना चाहिए जो केवल 'प्रचलन में' हैं और जिनका कोई आधार नहीं है। किसी से कोई तरीका सीखने के बाद ही हमें यह सवाल करना चाहिए कि यह कैसे काम करेगा। उदाहरण के लिए ऐसा लगता है कि खांसी के दौरान केला खाना वर्जित है क्योंकि अगर हम यह मिथक फैला दें कि केला चिपचिपा होता है, खांसी के दौरान रेशे/कफ की तरह, तो यह जोड़ दिया गया कि अगर पहले से ही बलगम आ रहा है, तो केला उसे बढ़ा देगा। जबकि ऐसा कोई संबंध नहीं है। साथ ही, बलगम/रेशे/कफ फेफड़ों से आता है और केले पाचन तंत्र में अवशोषित हो जाते हैं।

इसी भ्रांति के तहत, दस्त के दौरान दूध को वर्जित किया जाता है। होता क्या है कि दस्त होने के दौरान आंतों की गति बढ़ जाती है और जो कुछ भी खाया जाता है, वह लगभग ज्यों का त्यों या आधा पचा हुआ बाहर निकलता हुआ प्रतीत होता है। यही हाल दस्त के दौरान दूध पीने से होता है, जो पेट में खराबी होने के कारण फट कर मल के रूप में बाहर आ रहा होता है। खासकर बच्चों में जब वे केवल दूध पर ही निर्भर होते हैं और उनकी आंतों का आकार भी छोटा होता है। समझा जाता है कि दूध का रिसाव शायद दस्त का कारण है या इसे देना ज़रूरी नहीं है। इसे रोकने से, उल्टा, बच्चा और कमज़ोर हो जाता है और स्वास्थ्य पर भी बुरा असर पड़ता है।

गर्भावस्था में घी देने/न देने के बारे में प्रचलित मान्यताएँ भी ऐसी ही हैं। एक मान्यता यह है कि अगर हम घी देंगे तो बच्चे का वजन बढ़ जाएगा और प्रसव मुश्किल हो जाएगा।

एक और मान्यता यह है कि गर्भ के आखिरी महीने में घी देना चाहिए ताकि फैलोपियन ट्यूब में फैट होने से बच्चा आसानी से बाहर आ सके।

ये दोनों ही मान्यताएं बेबुनियाद हैं। बच्चे के पैदा होने में फैलोपियन ट्यूब में फैट होने का कोई आधार नहीं है, जबकि ज़्यादा घी से वज़न बढ़ने की बात के पीछे फिर भी तर्क है। लेकिन एक बात ज़रूरी है कि गर्भ के दौरान माँ की डाइट बढ़ानी चाहिए, जिसमें साबुत अनाज या मिक्स्ड फ़ूड (बराबर मात्रा में अनाज, दालें, घी, ड्राई फ्रूट्स) हों।

आयुर्वेद में खाने को लेकर सुबह/शाम/रात की धारणा को इस नज़रिए से देखना चाहिए कि रात में खाया गया खाना ज़्यादा तेजाबी न हो, जिसमें मिर्च मसालों का ज़्यादा इस्तेमाल न हो और उसे पचने में ज़्यादा समय न लगे, यानी पेट में ज़्यादा समय न लगे। क्योंकि खाने के बाद हम सो जाते हैं। अगर कुछ भी खाने के बाद सोने से पहले डेढ़ से दो घंटे का समय हो, तो कोई खास नुकसान नहीं है। रात को सोने से पहले दूध पीने का फायदा यह है कि दूध एसिडिटी कम करता है और रात में इंसान पाचन तंत्र को आराम की हालत में रख सकता है।

खांसी, जुकाम या गले में खराश होने पर खट्टे फलों का सेवन करने को मना किया जाता है और कहा जाता है कि इससे गला और ज्यादा खराब हो जाएगा। लेकिन इनमें मौजूद विटामिन - सी की मात्रा होती है जोकि खांसी-जुकाम में मददगार होती है।

इसी तरह दादी मां के नुस्खों के नाम पर कई खान-पान की धारणाएं , जड़ी-बूटियों के इस्तेमाल की जानकारियां हमारे आस-पास खूब भरी पड़ी है। अखबारों में भी धनिया, पुदीना, पपीता के फायदे/गुण छपते रहते हैं। आपको ध्यान से पढ़ना चाहिए, किसी भी अखबार के आर्टिकल में कभी इन चीजों को खाने की मात्रा और तरीका नहीं बताया जाता। न ही अलग-अलग लक्षणों के लिए मात्रा के बारे में नहीं बताया जाता।

हम मानते हैं कि ये सभी चीजें इंसान के शरीर के लिए फायदेमंद हैं, लेकिन बिना बताए इनका इस्तेमाल कभी भी नहीं करना चाहिए। हो सकता है कि कि किसी भी चीज का बिना नियंत्रण के इस्तेमाल नुकसान पहुंचा सकता है। इसके बारे में जागरूक होने की जरूरत है।

बच्चों से कभी ना कहें ये बातें

प्यार और डाँट की तरह, माता-पिता की बातें भी बच्चों के कोमल मन पर गहरा असर डालती हैं। कुछ बातें उन्हें प्रेरित करती हैं। कुछ उनके मन को ठेस पहुँचा सकती हैं, इसलिए उनसे ऐसी बातें न करें। आइए जानते हैं कि कौन सी बातें बच्चों के मन को ठेस पहुँचा सकती हैं।

1. इस उम्र में मैं तुमसे ज़्यादा ज़िम्मेदार था : भूलकर भी अपने बच्चे की तुलना खुद से न करें। ऐसा करने से आप बच्चे को खुद से दूर कर देंगे। ऐसा करने से वह ज़िद्दी हो जाएगा और उसे बेहतर बनाने की कोशिश में आप उसका आत्मविश्वास कमज़ोर कर देंगे।

2. आप हमेशा गलत फ़ैसले लेते हैं : बच्चे की क्षमताओं पर हमेशा शक न करें। गलतियाँ हर कोई करता है और देखा जाए तो इंसान गलतियों से ही सीखता है। हो सकता है कि आपका बच्चा अनुभव की कमी के कारण गलत फ़ैसला ले ले, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि आप उसे हमेशा इसके लिए डाँटते रहें। कई बार माता-पिता को बच्चे का चुना हुआ कोर्स या उसकी कंपनी पसंद नहीं आती और इसलिए वे बच्चे के फ़ैसलों पर उँगली उठाने लगते हैं। माता-पिता द्वारा बार-बार बच्चे को गलत मानने से उसका मनोबल टूट जाता है।



3. अपने भाई-बहनों से कुछ सीखें : बच्चे को बार-बार ऐसी सलाह देने की गलती न करें। ध्यान रखें कि जिस तरह पाँचों उंगलियाँ बराबर नहीं होतीं, उसी तरह हर बच्चा एक जैसा नहीं हो सकता। हमेशा भाई-बहन जैसा बनने की बात सुनकर बच्चा न सिर्फ़ हीन भावना का शिकार हो सकता है, बल्कि उसे अपने भाई-बहनों से नफ़रत भी हो सकती है। इतना ही नहीं, उसके मन में आपकी एक नकारात्मक छवि भी बन जाएगी, उसे लगेगा कि आप उससे प्यार नहीं करते।

4. यहाँ से चले जाओ : कई बार माता-पिता नाराज़ होकर अपने बच्चों को यहाँ से चले जाने को कह देते हैं।

5. अगर बच्चा बड़ा है, तो वह समझ सकता है कि आप गुस्से में हैं या आपका मूड खराब है, लेकिन छोटे बच्चे इतना नहीं समझते। इसलिए, आपके इस तरह के व्यवहार के कारण, वे खुद को उपेक्षित महसूस करने लगते हैं और फिर आपसे सहजता से बात भी नहीं कर पाते।

इस तरह, बच्चा धीरे-धीरे आपसे दूर होता जाता है और अकेलेपन और निराशा का शिकार हो सकता है।

5. खुद पर शर्म करें : माना कि बच्चे शरारत और मस्ती में बहुत सी गलतियाँ कर बैठते हैं, लेकिन उसके लिए इतने कठोर शब्दों का इस्तेमाल न करें। बच्चों को सही और गलत का फर्क समझाने के भी तरीके हैं।

6. आप अपने माता-पिता के बिल्कुल खिलाफ हो गए हैं : कभी-कभी पारिवारिक झगड़ों या आपसी मतभेदों के कारण पति-पत्नी अलग हो जाते हैं। ऐसे में, जब बच्चा कुछ गलत करता है, तो वे उस साथी का नाम लेकर बच्चे को कोसने लगते हैं, जिसका बच्चे पर बुरा असर पड़ता है। अगर आप अपने बच्चे से कहेंगे कि आपने अपने माता-पिता का पूरी तरह से अनादर किया है, तो आपके प्रति उसका सम्मान कम हो जाएगा।

7. तुम हमेशा मुझे दुख पहुँचाते हो : कभी-कभी बच्चे बिना सोचे-समझे अपने माता-पिता के खिलाफ चले जाते हैं, कुछ अनजाने में ऐसा करते हैं, कुछ जानबूझकर। बच्चा चाहे जानबूझकर माता-पिता की भावनाओं को ठेस पहुँचाए या अनजाने में, माता-पिता को कभी भी उनके प्रति कठोर शब्दों

का प्रयोग नहीं करना चाहिए। ''तुम हमेशा मुझे दुख पहुँचाते हो'', आपके ऐसे शब्द बच्चे को दोषी महसूस कराते हैं और हो सकता है कि वह आपको खुश रखने के लिए न चाहते हुए भी आपकी बातें मान ले, लेकिन इस तरह आप उसकी आज़ादी छीन लेंगे और आपका बच्चा खुश नहीं रह पाएगा।

8. आपके जैसे बच्चे से तो बेऔलाद रहना ही बेहतर है : अपने बच्चे से भूलकर भी ये बात न कहें, क्योंकि अगर ये बात एक बार भी आपके मुँह से निकल गई, तो आप अपने बच्चे को हमेशा के लिए खो देंगे और ज़िंदगी भर पछताने के अलावा आपके पास कोई चारा नहीं रहेगा।

9. बुरे दोस्तों से दूर रहें : जब बड़े दोस्त बनाते वक्त सोचते नहीं, तो बच्चों से ऐसी उम्मीद कैसे की जा सकती है? खैर, बड़ों और बच्चों की दोस्ती में बस इतना ही फ़र्क़ होता है कि बड़े अच्छे-बुरे की समझ रखते हैं, लेकिन बच्चे नहीं।

10. इसलिए जब आप उन्हें बुरे दोस्तों से दूर रहने के लिए कहते हैं, तो वे आपकी बात नहीं मानते, क्योंकि बच्चों के लिए उनके दोस्त बहुत ज़रूरी होते हैं, इसलिए उनसे दूर रहने का विचार उन्हें पसंद नहीं आता और जब आप ऐसा कहते हैं, तो वे आपको बुरा समझने लगते हैं। सीधे तौर पर ऐसा कहने के बजाय, अगर आपने उनके दोस्त के बारे में कुछ बुरा देखा या सुना है, तो उसे शांति से तर्कों के साथ समझाएँ, न कि उसे ज़बरदस्ती मना करें... वगैरह।

स्रोतः हिंदी पत्रिका 'मेरी सहेली'

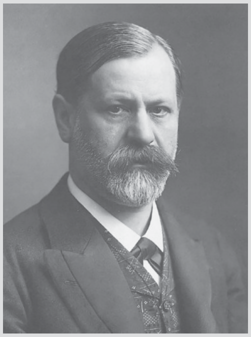
नरिंदर कपूर के विचार

अगर समाज को अज्ञानता, धार्मिक पाखंड और रूढ़ियों से बचाना है, तो वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना सबसे ज़रूरी है। विज्ञान मानव जीवन का आधार है। यह केवल प्रयोगशाला या शोध तक सीमित नहीं है, बल्कि जीवन के हर पहलू से जुड़ा है। विज्ञान मनुष्य को तार्किक रूप से सोचने, प्रयोग करने और सत्य की खोज करने की क्षमता प्रदान करता है और मनुष्य को भय और भ्रम से मुक्त करके, उसे वास्तविकता को जानने की समझ देता है।

उनका मानना है कि अंधविश्वास मानव मन को गुलाम बना देता है। जब कोई व्यक्ति बिना सोचे-समझे किसी बात को मान लेता है, तो उसकी तर्कशक्ति खत्म हो जाती है। उनका कहना है कि जहाँ भी विज्ञान का प्रकाश पहुँचता है, वहाँ अज्ञानता का अंधकार मिट जाता है।

वे जादू-टोना, कुंडली, ताबीज़ और धार्मिक चमत्कारों के झूठे दावों को उजागर करने के पक्षधर हैं।अगर मनुष्य वैज्ञानिक सोच अपना ले, तो ये अंधविश्वास अपने आप दूर हो जाएँगे। तर्क मनुष्य को गुलामी से मुक्त करता है और उसे स्वतंत्र रूप से सोचने की क्षमता देता है।

वह अक्सर कहते हैं कि ''तर्कहीन विश्वास गुलामी के समान है।'' इस वाक्य के माध्यम से, वह समाज को यह संदेश देते हैं कि जो भी बात हमें समझ में नहीं आती, उसकी वैज्ञानिक जाँच-पड़ताल करनी चाहिए। उनका मानना है कि तर्कसंगत सोच न केवल विज्ञान की नींव है, बल्कि एक सच्चे लोकतंत्र की भी नींव है।



सिग्मंड फ्रायड के माता पिता यहूदी धर्म के अनुयायी थे। बचपन में उन्हें धार्मिक शिक्षा देने के लिए 'नैनी' नामक एक प्रौढ़ा नियुक्त की गई, जिस ने विभिन्न धार्मिक कथाओं के माध्यम से ईश्वर, स्वर्ग, नरक, आत्मा, पाप, पुण्य आदि से संबंधित धार्मिक विश्वासों की शिक्षा दी। इस शिक्षा का उन के भावी जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। धर्म संबंधी अंधविश्वासों के प्रति उनके मन में उत्पन्न घृणा इसी शिक्षा का परिणाम है।

वैसे तो फ्रायड को एक मनोविश्लेषक माना जाता है, किंतु वह आस्थावादी अंधविश्वासों के भी प्रबल विरोधी थे। फ्रायड ने यहूदियों के धर्म व्यवस्थापक पैगंबर मूसा के जीवन के उपलब्ध तथ्यों का अध्ययन कर के उन के मरणोपरांत एक मनोविश्लेषण प्रस्तुत किया, जिससे फ्रायड के धर्म और ईश्वर संबंधी विचार सामने आए।

फ्रायड के अनुसार, धर्म एक सुखद दिग्भ्रम है, इसके अतिरिक्त यह सामुदायकि तौर पर मानव जाति को अभिभूत करने वाला मनोरोग भी है। धार्मिक वृत्ति मनुष्य की स्नायुविक रुग्णावस्था की द्योतक है। जिन मानसिक दशाओं में धर्म की उत्पत्ति होती है, वे विश्लेषण करने पर उन दशाओं से भिन्न नहीं प्रतीत होते, जिन में मनोरोग उत्पन्न होते हैं।

वैज्ञानिक सोच और जीवनशैली

–सुरेश रतन

मेरे लिए विज्ञान सिर्फ़ नवीनतम स्मार्टफ़ोन, टेस्ला कारें, रोज़मर्रा के घरेलू उपकरण और अन्य सुविधाएँ ही नहीं हैं। इसी तरह, विज्ञान के ज़रिए बनी दवाइयाँ, टीके और अन्य उपचार, बिजली, कंप्यूटर, परिवहन के साधन और अंतरिक्ष तक पहुँचने की सफलता, ये सभी विज्ञान के एक बेहद विकसित और सराहनीय तकनीकी पहलू हैं। हाँ, नए और अभिनव घातक हथियार और पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाले कई तरीके भी विज्ञान के तकनीकी पहलू का हिस्सा हैं।

लेकिन मेरे लिए विज्ञान, सोच और जीवन जीने का एक बेहद सफल, मूल्यवान और मानवीय तरीक़ा भी है। अपने अब तक के अड़सठ वर्षों में से, मैंने लगभग पचास वर्ष विज्ञान के अध्ययन, अध्यापन और शोध में बिताए हैं। यहाँ मैं आपके साथ साझा करना चाहता हूँ कि मैंने अब तक विज्ञान के बारे में क्या समझा है और मैं इसे अपने जीवन में कैसे अपना पाया हूँ।

वैज्ञानिक सोच क्या है?

विज्ञान मनुष्य की जिज्ञासा और अपने परिवेश को जानने, समझने और सभी की भलाई के लिए उसका उपयोग करने की क्षमता को पूरा करने का सबसे सफल तरीक़ा प्रतीत होता है।

वैज्ञानिकचिंतन के पाँच मुख्य तत्व हैं :

1. वैज्ञानिक चिंतन ऊपर से आने वाला, पारलौकिक और अचानक प्राप्त होने वाला ज्ञान नहीं है।

2. वैज्ञानिक ज्ञान मनुष्य द्वारा स्वयं उत्पन्न प्रश्नों के स्व-निर्मित उत्तरों की एक सतत श्रृंखला है, जिन्हें आवश्यकतानुसार बदला जाता है और नए तथ्यों पर आधारित किया जाता है।

3. वैज्ञानिक चिंतन और तथ्य किसी वास्तविक या काल्पनिक व्यक्ति या सत्ता पर निर्भर या आधारित नहीं होते, बल्कि वे स्वयं दृश्यमान और परीक्षण योग्य होते हैं।

4. विज्ञान में ऐसी कोई अवधारणा, तथ्य या मानव नहीं है जिसे किसी भी प्रश्न पर चुनौती न दी जा सके।

5. वैज्ञानिक विचार, तथ्य और तकनीक सभी मनुष्यों और अन्य जीवों पर समान रूप से लागू होते हैं, और इनमें किसी भी प्रकार का धार्मिक, सामाजिक या अन्य भेदभाव नहीं होता।

ऊपर दिए गए ये पाँच सत्य या सिद्धांत मुख्यत: समस्त विज्ञान का आधार हैं। ये पाँच सिद्धांत यह जानने या परखने में सहायक हैं कि मेरा दैनिक जीवन, मेरी सोच और दूसरों के प्रति मेरा व्यवहार, तथा संपूर्ण विश्व और ब्रह्मांड के प्रति मेरा दृष्टिकोण वैज्ञानिक है या नहीं।

वैज्ञानिक जीवन शैली :- मैंने अपना जीवन वैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुसार जीने का प्रयास किया है। लेकिन इस प्रकार जीने के लिए, मुझे सोलह-अठारह वर्ष की आयु तक इस बात को लेकर बहुत संघर्ष करना पड़ा कि बचपन के पहले दस वर्षों में अनजाने में या जानबूझकर थोपे गए या अपनाए गए अवैज्ञानिक विचारों और व्यवहारों को कैसे त्यागूँ या बदलूँ।

बचपन के पहले सात से दस वर्षों में थोपे, सीखे और स्वीकारे गए विचार, विश्वास, अंधविश्वास, अवधारणाएँ और व्यवहार-पद्धतियाँ मन और हृदय में इतनी गहराई से समा जाती हैं कि जीवन भर उनके प्रति सचेत और जागरूक रहना पड़ता है। अन्यथा, भावनात्मक और संवेदनशील परिस्थितियों में, जैसे शारीरिक और आर्थिक तंगी, किसी मित्र या प्रियजन, बच्चे या माता-पिता की मृत्यु, नौकरी और वैवाहिक संबंधों में समस्याएँ, बढ़ती उम्र और बुढ़ापा और अपनी मृत्यु को निकट देखकर, बचपन में अर्जित अवैज्ञानिक विचार पुन: प्रबल हो सकते हैं।वैज्ञानिक जीवन जीने के लिए बचपन से ही वैज्ञानिक सोच सीखना और सिखाना ज़रूरी है। लेकिन हमारे वर्तमान समाज में ऐसी संभावना अभी भी बहुत कम है। फिर भी, बड़े होने पर भी वैज्ञानिक जीवन शैली सीखना और अपनाना बहुत संभव है, भले ही इसके लिए कुछ अतिरिक्त प्रयास करने पड़ें।

वैज्ञानिक जीवन शैली क्या है, यह जानने, समझने और उसका उपयोग करने का एक तरीका है अपने और दूसरों के व्यवहार में "अवैज्ञानिकता" को पहचानना। मेरे विचार और समझ में, अवैज्ञानिक होने के पाँच मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं-

1. किसी भी रूप, रंग या विचार में किसी दिव्य शक्ति में विश्वास और भक्ति, जो सर्वव्यापी, अनंत है और इस संसार के सभी प्राणियों के जीवन और मृत्यु की रचयिता और कर्ता है।

2. किसी गंभीर शारीरिक या मानसिक पीड़ा के दौरान भय, लाचारी और भावुकता की स्थिति में किसी भी प्रकार की

प्रार्थना, पूजा, व्रत, व्रत, यज्ञ और ऐसे ही कई अन्य अनुष्ठान करना।

3. भावना, आवश्यकता और लोभ के कारण अपने और अपनों के लिए प्रार्थना, पूजा, व्रत, यज्ञ, बलिदान और ऐसे ही अनेक अनुष्ठान करना।

4. अपनी सोच, रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान और रूप-रंग से भिन्न लोगों को बुरा, हीन और पापी समझना और उनके बारे में बुरे विचार रखना।

5. भाग्य, पूर्व कर्म और स्वर्ग-नरक की अवधारणाओं के आधार पर समाज में प्रचलित स्त्री-पुरुष, सामाजिक और आर्थिक ऊँच-नीच, तथा शारीरिक रूप, रंग और अंगों के भेदों को उचित ठहराना।

मेरे विचार से ये पाँचों अवधारणाएँ और व्यवहार अवैज्ञानिक हैं। मैंने लगभग जीवन भर इन अवैज्ञानिक अवधारणाओं और व्यवहारों से पूरी तरह मुक्त रहने और वैज्ञानिक रूप से जीने का प्रयास किया है। इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि मैं दु:खी नहीं होता या दु:ख में रोता नहीं हूँ या अपनी और अपनों की उपलब्धियों पर प्रसन्न नहीं होता या कभी किसी लोभ में नहीं पड़ता या कभी किसी से ईर्ष्या नहीं करता या मैं काम, क्रोध, मोह, लोभ और अहंकार से पूरी तरह मुक्त हूँ।ये सभी बातें, विचार और व्यवहार हमारी नैतिकता और मानव होने का अभिन्न अंग हैं। लेकिन मुझे ऐसी नैतिकता बनाए रखने और नैतिक जीवन जीने के लिए किसी अवैज्ञानिक तरीके का उपयोग करने की आवश्यकता नहीं है। मैं अगले जन्म में किसी पुरस्कार-स्वर्ग के लालच या नरक में दंड के भय से सच्चा स्वच्छ, ईमानदार, निर्लोभी, विश्वसनीय, सहायक, दयालु नहीं बनता। यदि मैं चाहता हूँ कि दूसरे मेरे प्रति भी ऐसा ही व्यवहार करें, तो मुझे भी ये सब करने की आवश्यकता है।

मेरी वैज्ञानिक सोच और व्यवहार के कारण मेरे मन को किसी भी अनावश्यक, अवांछित और थोपे हुए भय और बोझ को सहन नहीं करना पड़ता। लेकिन यह समझना भी बहुत ज़रूरी है कि मेरे अपने मानसिक स्वास्थ्य, सहजता, सुख, शांति और समृद्धि के लिए यह शर्त है कि मेरे आस-पास, निकट और दूर, मित्र और अजनबी, ज्ञात और अज्ञात लोग, जीव-जंतु और संपूर्ण पर्यावरण सभी के लिए ऐसा ही संभव हो। ऐसी है वैज्ञानिक सोच और ऐसी है वैज्ञानिक जीवन पद्धति।

तानाशाह

तानाशाह को अपने किसी पूर्वज के जीवन का अध्ययन नहीं करना पड़ता।

वह उनकी पुरानी तस्वीरों को जेब में नहीं रखता या उनके दिल का एक्स-रे नहीं देखता।

यह स्वत: स्फूर्त तरीके से होता है कि हवा में बंदूक की तरह उठा हुआ उसका हाथ या बंधी हुई मुट्ठी के साथ पिस्तौल की नोक की तरह उठी हुई अंगुली किसी पुराने तानाशाह की

याद दिला जाती है या एक काली गुफा जैसा खुला हुआ उसका मुंह इतिहास में किसी ऐसे ही खुले हुए मुंह की नकल बन जाता है।

वह अपनी आंखों में काफी कोमलता और मासूमियत लाने की कोशिश करता है

लेकिन क्रूरता, कोमलता से ज्यादा ताकतबर होती है, इसलिए वह एक झिल्ली को भेदती हुई बाहर आती है और इतिहास की सबसे ठंढी क्रूर आंखों में तबदील हो जाती है।

तानाशाह मुस्कुराता है भाषण देता है और भरोसा दिलाने की कोशिश करता है कि वह एक मनुष्य है

लेकिन इस कोशिश में उसकी मुद्राएं और भंगिमाएं उन दानबों-दैत्यों-राक्षसों की मुद्राओं का रूप लेती रहती है

जिनका जिक्र प्राचीन ग्रंथों-गाथाओं-धारणाओं-विश्वासों में मिलता है

वह सुंदर दिखने की कोशिश करता है
आकर्षक कपड़े पहनता है
बार-बार बदलता है
लेकिन इस पर उसका कोई वश नहीं कि
यह सब
एक तानाशाह का मेकअप बन कर रह जाता है।
इतिहास में तानाशाह कई बार मर चुका है
लेकिन इससे उस पर कोई फर्क नहीं पड़ता
क्योंकि उसे लगता है, उससे पहले कोई नहीं हुआ है।

-मंगलेश डबराल

एक समझदार आदमी

-हरि शंकर परसाई

हरि शंकर परसाई हिंदी के एक जाने-माने व्यंग लेखक हैं। वे पुरानी सोच के खिलाफ़ कड़ा रुख अपनाते हैं। नीचे दिया गया व्यंग निबंध उनकी किताब %निठल्ला की डायरी% से लिया गया है।

बहुत से लोग पूछते हैं कि मेरी दृष्टि इतनी साफ कैसे हो गई है। मेरा व्यक्तित्व इतना सरल कैसे हो गया है? बात यह है कि कई वर्ष पहले मैंने खुद से कुछ सीधे-सादे सवाल पूछे थे। तब मेरी आत्मा बहुत पवित्र थी। पहली शेव के बाद के चेहरे की तरह। कुछ लोगों की समझ बुढ़ापे तक वैसी ही रहती है, जैसी जन्म के समय थी। जैसे बचपन में वे अपने पिता का माल बिना झिझक खाते हैं, वैसे ही पूरी ज़िंदगी दुनिया भर को बाप समझ के उनका माल मुफ्त में खाते हैं। मेरे शुद्ध मन के सीधे सवालों के सीधे जवाब थे, जैसे बटन दबाने से पंखा चलने लग पड़े। इंसान उन सवालों के जवाबों से बचकर खुश रहता है जिनसे दुख होता है। मैंने हमेशा खुश रहने की कोशिश की है। मैंने इन सवालों के अलावा कोई सवाल नहीं पूछा और न ही अपने जवाब बदले हैं। यही मेरी स्पष्ट दृष्टि, मेरे आत्मविश्वास और मेरी खुशी का राज है। दूसरों को खुशी का रास्ता दिखाने के लिए, मैं वो सवाल और उनके जवाब नीचे दे रहा हूँ।

आप किस देश से हैं?

-भारत के

-दुनिया में सबसे पुरानी संस्कृति किस देश की है?

-भारत की।

-आप किस जाति से हैं?

-आर्य

-दुनिया की सबसे पुरानी जाति कौन सी है?

-आर्य

-और सबसे अच्छी जाति?

-आर्य

-क्या आपका ब्लड टेस्ट हुआ है?

-हाँ, इसमें सौ प्रतिशत आर्य सेल हैं।

-भगवान से क्या प्रार्थना करते हैं?

-कि वह हमें फिर से भारत-वर्ष में ही पैदा करे।

-बाकी भूमि कैसी है?

-बाकी सारी पाप-भूमि है।

-ज्ञान-विज्ञान किसके पास है?

-सिर्फ़ आर्य जाति के पास।

-यानी, आपके पास है?

-नहीं, हमारे पूर्वज आर्य लोगों के पास।

-क्या उसके बाहर कोई ज्ञान-विज्ञान नहीं है?

-कहीं नहीं।

-क्या इन हज़ारों सालों में इंसानियत ने कोई कामयाबी हासिल की है?

-कोई नहीं। सारी उपलब्धियाँ तो हमारे पास पहले से ही थीं।

-क्या अब हमें कुछ सीखने की ज़रूरत है ?

-बिल्कुल नहीं। हमारे पूर्वज विश्व-गुरु थे।

विश्व में सबसे महान कौन है ?

-हम, हम, हम, हम....

मेरा मन अत्यंत प्रसन्न हो गया । आँसू बहने लगे। मैंने अपनी आँखें बंद कर लीं। मेरे मुँह से शब्द निकलने लगे, 'अहा!... क्या मज़ा है' उसी समय, मेरा एक जान-पहचान वाला वहाँ आ गया।

उन्होंने कहा, ''क्या तुम्हारी आँखों में दर्द हो रहा है? क्या कोई दवाई डाल रखी है?''

मैंने कहा, ''अंजन लग गया है। लेकिन बाहरी आँखों में नहीं, बल्कि अंदर की आँखों में। मुझे नई दृष्टि मिल गई है। मैं बहुत खुश हूँ। अब सब कुछ आसान हो गया है। इतिहास सामने आ गया है। ज़िंदगी के राज़ खुल गए हैं। मन में कोई सवाल नहीं उठता, कोई शक नहीं उठता। जितना जानने लायक था, मैंने जान लिया है। हमारी पूरी जाति जान चुकी है। अब जानने लायक कुछ नहीं बचा, करने लायक कुछ नहीं बचा।''

मैंने उन्हें वो सवाल-जवाब बताए । उन्होंने कहा, ''ठीक है। मैं समझ गया। आत्मविश्वास धन का होता है , शिक्षा का भी और बल का भी , लेकिन सबसे बड़ा आत्मविश्वास नासमझी का होता है।''

मैंने इसे अपनी तारीफ़ समझा और अपनी सोच पर और दृढ़ हो गया। मैंने अपने विचार खुलकर बताने शुरू किए और लोगों को वे दिलचस्प लगने लगे। लोग मुझे सुनने के लिए बेचैन होने लगे और मुझे इंजीनियर से लेकर फ़िलॉसफ़र तक बुलाना शुरू कर दिया।

एक दिन डॉक्टरों की मीटिंग में मैंने कहा, ''पश्चिम डींगें हाँकता है कि उसने पेनिसिलिन खोजकर इंसान की उम्र बढ़ा दी है। उन्हें नहीं पता कि पेनिसिलिन की खोज यहाँ महाभारत युद्ध के दौरान हुई थी, दूसरे वर्ल्ड वॉर के दौरान नहीं। दोस्तों! सोचिए भीष्म पितामह, ब्रह्मचारी, अविवाहित अपनी मौत के बिस्तर पर लेटे हुए हैं। उनका पूरा शरीर तीरों और ज़ख्मों से भरा हुआ है। वे सूरज की गति देख रहे हैं। कब सूरज डूबे और वे प्राण त्यागें। वे इक्यावन दिन जिए और फिर भी ज़ख्मों से नहीं मरे, उन्होंने अपनी मर्ज़ी से अपनी जान दी। मैं पश्चिम के वैज्ञानिकों से पूछता हूँ कि उनके ज़ख्म 'सेप्टिक' क्यों नहीं हुए? पेनिसिलिन की वजह से। उन्हें पेनिसिलिन दी गई थी। वही पेनिसिलिन जो भारत ने दस हज़ार साल पहले दुनिया को दी थी, पश्चिम हमें ऐसे दे रहा है जैसे यह उसकी खोज हो। दोस्तों! यह मत भूलिए कि भारत विश्व-गुरु है। ''हमें कोई कुछ नहीं सिखा सकता।''

खूब तालियां बजीं और सब इस बात पर सहमत थे कि कोई हमें कुछ नहीं सिखा सकता।

हाल ही में हुए भारत-पाकिस्तान युद्ध में एंटी-टैंक गन के बारे में बहुत बातें हुईं। जब मैं यह सुनता था तो मुझे हंसी आती थी। आखिर में, एक दिन एक सभा में मैंने कहा, ''जो लोग एंटी-टैंक तोप की तारीफ़ करते हैं, वे भूल जाते हैं कि टैंक आज बनते हैं, लेकिन एंटी-टैंक तोपें त्रेता-युग में यहाँ हमारे भारत में बनती थीं।

भाइयो, उस सीन की कल्पना करो। राम सुग्रीव से कह रहे हैं कि मैं बाली को मारूंगा। सुग्रीव शक ज़ाहिर करता है। वह कहता है कि बाली एक महान योद्धा है, मुझे विश्वास नहीं है कि तुम उसे मार पाओगे। फिर क्या होता है कि वह मर्यादा पुरुषोत्तम धनुष उठाता है, तीर लोड करता है और ताड़ के पेड़ों की एक लाइन पर चलाता है। तीर एक के बाद एक सात ताड़ के पेड़ों को भेदता है। सुग्रीव हैरान रह जाता है। जंगल के जानवर, पक्षी, खरगोश और हिरण सभी हैरान रह जाते हैं। सज्जनों, जो लोग एक तीर से सात ताड़ के पेड़ों को भेदते थे, क्या उनके पास सबसे मोटे टैंक को भेदने की तोप नहीं थी? ''मत भूलो, हम दुनिया के गुरु रहे हैं और हमें कोई कुछ नहीं सिखा सकता।''

खूब तालियाँ बजीं और सब इस बात पर सहमत हुए कि हमें कोई कुछ नहीं सिखा सकता।

एक दिन, मनोविज्ञान पर एक सेमिनार चल रहा था। प्रोफेसर लंबे-लंबे लेक्चर दे रहे थे। जब मुझसे और बर्दाश्त नहीं हुआ, तो मैंने भी बोलना शुरू कर दिया। मैंने कहा, '' मनोविज्ञान - हं! यह मनोविज्ञान है। मैं पूछता हूँ कि क्या पुराने भारत में मनोविज्ञान नहीं था? बिल्कुल था। उस दृश की कल्पना करो। यह एक सुनसान जंगल की जगह है। एक ऋषि और उनकी पत्नी एक साफ चट्टान पर बैठे हैं। चाँदनी फैल रही है। समय धीरे-धीरे गुजर रहा है। ऐसे माहौल में ऋषि और उनकी पत्नी के मन में क्या भावनाएँ उठ रही होंगी? बस, यही मनोविज्ञान है। यह हज़ारों साल पहले हमारे यहाँ मोजूद था और वे(पश्चिम वाले) कहते हैं कि यह एक आधुनिक विज्ञान है। वे भूल जाते हैं, हमें कोई कुछ नहीं सिखा सकता।

लोगों ने तालियां बजाईं और सब इस बात पर सहमत हुए कि कोई हमें कुछ नहीं सिखा सकता।

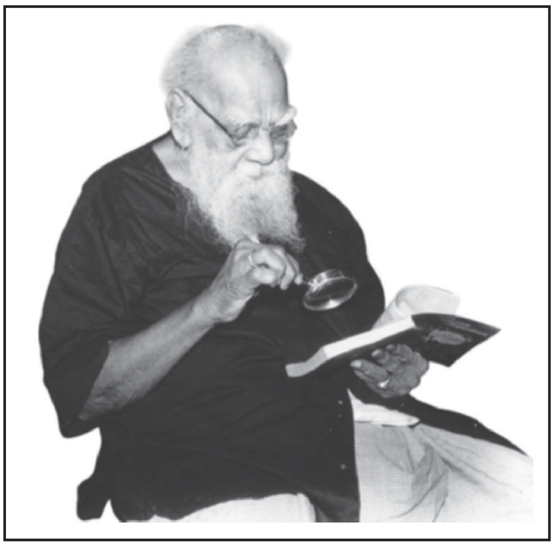
मेरा दृष्टि इतनी साफ़ और अलग हो गई है कि मेरी बातें तर्क से दूर होती हैं। आपको उस पर विश्वास करना पड़ता है । जहां पर मैं एक बार भाषण दे देता हूं, वहां लोग तुरंत मान जाते हैं कि कोई हमें कुछ नहीं सिखा सकता। मुझे पता है कि मेरी बातें सुनने के बाद बहुत से लोगों ने कुछ भी नया सीखना बंद कर दिया है।

'सेल्फी' की सनक युवाओं को कुंठा और हीन भावना का शिकार बना रही है। इस सनक को दुनिया भर में 'सोशल मीडिया' ने बढ़ावा दिया है। मनोचिकित्सकों ने **'सेल्फी'** को एक मनोरोग मान लिया है। उनके मुताबिक **'सेल्फीसाइटिस'** एक ऐसी स्थिति है, जिसमें अगर व्यक्ति **'सेल्फी'** लेकर सोशल मीडिया पर नहीं डालता तो उसे बेचैनी होने लगती है। इस सनक का लोगों के रिश्तों पर भी बुरा असर पड़ रहा है। कई लोग सेल्फी के चक्कर में अपना जीवन तक खत्म कर लेते हैं। हमें इस सनक से बचना चाहिए।

पेरियार की विरासत

–कुलजीत डँगर खेड़ा

हमेशा सीखते रहने की इच्छा व्यक्ति को दूर–दूर तक की यात्राएं करने के लिए प्रेरित करती है। दुनिया के जिन महान लोगों ने कुछ नया सीखने के लिए लंबी दूरियाँ तय कीं, वे दूसरों के लिए ज्ञान का स्रोत बन गए। सुकरात, फाह्यान, ह्वेनसांग, चार्ल्स डार्विन जैसे लोग दुनिया देखने के लिए घर से निकले। उन्होंने जो कुछ भी देखा और सीखा लोगों को जागरूक करने के लिए , उसे लिख लिया जोकि अब इतिहास के पन्नों में दर्ज हो गया है। कुछ नया सीखने की इच्छा ने मुझे भी गत वर्ष दिसंबर में तमिलनाडु के एक बड़े शहर तिरुचिरापल्ली में आयोजित 13वें फेरा सम्मेलन में भाग लेने के लिए आकर्षित किया। हम फाजिल्का ज़ोन के तेरह तर्कशील साथी सम्मेलन शुरू होने से दो दिन पहले वहां पहुँच गए ।



स्वर्ण प्रतिमा : यहाँ हमें तिरुचिरापल्ली में स्थित विश्व के सबसे बड़े रंगनाथस्वामी मंदिर जाने का अवसर मिला। वहाँ जाने का हमारा उद्देश्य कोई धार्मिक तीर्थयात्रा करना नहीं था बल्कि, हम वहाँ सदियों पुराने वास्तुशिल्प कलाकारों को सलाम करने गए थे, जिन्होंने बिना सीमेंट – सरीए के इतनी बड़ी संरचना को खूबसूरती से बनाया ,जो देश–विदेश के लाखों पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र बन गया है। वहां जाने का सबसे महत्वपूर्ण कारण इस विशाल काय मंदिर के द्वार के बिलकुल सामने प्रसिद्ध विद्वान ई. वी रामास्वामी पेरियार की प्रतिमा देखना था गर्व की बात थी। इतनी बड़ी धार्मिक संस्था के सामने तर्कशीलता, आत्मविश्वास, महिलाओं के अधिकारों और जातिवाद के उन्मूलन के उच्चतम आदर्शों का उपदेश देने वाले व्यक्ति की एक बड़ी स्वर्ण प्रतिमा स्थापित होना, अपने आप में गर्व की बात थी। जो तथाकथित धार्मिक लोगों से बड़े सवाल पूछ रही है। इस मूर्ति को वहां से हटाने के कई असफल प्रयास हुए, लेकिन सच्चाई को कभी भी नजरअंदाज नहीं किया जा सका। तमिलनाडु में स्वामी पेरियार का बहुत सम्मान है और बड़ी संख्या में लोग उनकी विचारधारा का अनुसरण करते हैं। एक नास्तिक की मूर्ति आज भी वहां अविचल रूप से खड़ी है, जो इसे देखने वालों के मन में कई सवाल खड़े करती है।

डॉ. कलाम को सलाम : हमारा अगला पड़ाव रामेश्वरम था, जोकि महान वैज्ञानिक ए पी जे अब्दुल कलाम और प्रख्यात गणितज्ञ रामानुजन का शहर है। समुद्र में एक पुल द्वारा भारत की मुख्य भूमि से अलग इस द्वीप पर पहुँचना, हम सभी के लिए रोमांचकारी था। जब हम डॉ. कलाम के घर पहुंचे तो वहां उनके प्रशंसकों की भारी भीड़ लगी हुई थी। डॉ. कलाम के जीवन को दर्शाती फोटो गैलरी से पता चला कि इसी स्थान पर पहले उनका यहां एक झोपड़ीनुमा घर था जिसमें कलाम ने गरीबी भरा जीवन जिया। एक कमरे में किताबों का संग्रह था, जिसे पढ़कर डॉ. कलाम एक महान वैज्ञानिक बने। कलाम का गरीबी और कठिनाइयों से भरा जीवन एक प्रेरणा और सबक है कि कड़ी मेहनत, प्रयास और दृढ़ निश्चय से व्यक्ति कोई भी मुकाम हासिल कर सकता है। मैंने डॉ. कलाम गैलरी के बगल में बनी एक पुस्तक स्टाल पर पाठकों की भीड़ देखी। रामेश्वरम में हर घर और दुकान के सामने हर सुबह बनाई जाने वाली रंगोली बाहर से आने वाले पर्यटकों और मेहमानों के स्वागत का प्रतीक है।

अनुशासन और जागरूकता : तिरुचिरापल्ली फिरा सम्मेलन पेरियार सैंटेनरी शैक्षिक परिसर में आयोजित किया गया। वैज्ञानिक चेतना के प्रचार–प्रसार में लगे संगठन रेशनेलिस्ट फोरम तमिलनाडु ने देश भर से आए सदस्यों के लिए उत्कृष्ट

व्यवस्था की हुई थी। स्वागत समारोह के लिए, मुख्य द्वार से सम्मेलन स्थल तक लगभग तीन सौ मीटर लंबे मार्ग के दोनों ओर रेशनेलिस्ट फोरम की महिला कार्यकर्ता पंक्तिबद्ध होकर खड़ी थीं और प्रत्येक प्रतिनिधि का स्वागत कर रही थीं। उनके हाथों में विश्व के महान विद्वानों के चित्र और विचारों वाले बोर्ड पकड़े हुए थे। वहाँ का अनुशासन और सम्मेलन में भाग लेने वाली महिलाओं की बड़ी संख्या सम्मेलन का एक महत्वपूर्ण पहलू प्रतीत हुई। शायद यह स्वामी पेरियार जैसे विद्वानों के विचारों का ही प्रभाव है कि पूरे तमिलनाडु में अधिकांश व्यवसाय महिलाओं द्वारा चलाए जा रहे हैं। अधिकांश दुकानें और होटल महिलाओं द्वारा संचालित किए जाते हैं। हमें उनकी संस्कृति से सीखने की जरूरत है जो महिलाओं को आदर और सम्मान देती है तथा प्रगतिशील भूमिका निभाती है।

मातृभाषा का गौरव : सम्मेलन स्थल से अपने होटल तक पहुंचने के लिए हमने रात्रि 10ः30 बजे स्थानीय बस ली। बस में एक लड़की सभी लोगों से वार्तालाप कर रही थी। उससे बातचीत करने पर हमें पता चला कि दीप शिखा नाम की यह लड़की समाजशास्त्र में पीएचडी कर रही थी। वह अपने शोध कार्य के लिए लोगों से डेटा एकत्र कर रही थी। वह हमसे भी तमिल में बातचीत कर रही थी। जब मैने उससे पूछा तो उसने अंग्रेजी में बताया कि वह सात भाषाएं बोल सकती है। फिर उन्होंने हिंदी बोलते हुए कहा कि वह हिंदी बोल सकती हैं लेकिन हम लोगों को हिंदी बोलना कम पसंद है। हम अपनी मातृभाषा से बहुत प्रेम करते हैं। हमें समझ में आया कि हमने पूरे तमिलनाडु में हिंदी में लिखा कोई साइनबोर्ड नहीं देखा , हर दुकान, बस, टैक्सी, संस्थान आदि पर सिर्फ तमिल में ही लिखा था। हमें भी उनसे सीख लेनी चाहिए कि अपनी मातृभाषा को संरक्षित रखें और हर जगह उसका प्रयोग करें।

स्वास्थ्य सुरक्षा : तिरुचिरापल्ली शहर में बहुत कम मेडिकल स्टोर और अस्पताल हैं। यह लोगों के स्वस्थ जीवन का एक उदाहरण है। वहां के लोगों के स्वास्थ्य के बारे में सोचने पर पता चला कि उनके स्वास्थ्य का रहस्य उनका परिश्रमी स्वभाव और वहाँ का हरा–भरा वातावरण है। लोग इतने सफाई पसंद हैं कि हमें कहीं पर भी कूड़े का ढेर दिखाई नहीं दिया। बिल्कुल साफ–सुथरी सड़कें, सादा खाना–पीना, कहीं भी फास्ट फूड की दुकानें नहीं हैं और न ही हमें कोई नशा करने वाला व्यक्ति मिला। हमारे एक साथी ने इंटरनेट पर वहां का वायु गुणवत्ता स्कोर चेक किया तो वो केवल अठारह था, जबकि उसी समय पंजाब का वायु गुणवत्ता स्कोर 256 था, जो साँस लेने के लिए बहुत खतरनाक है। हमें उनसे सीखना चाहिए कि अपने पर्यावरण को कैसे संरक्षित और स्वच्छ रखा जाए।

बुद्धिमानीपूर्ण प्रशंसा : कन्याकुमारी पहुँचने पर हमें एहसास हुआ कि तमिलनाडु के लोगों में अपने लेखकों और बुद्धिजीवियों के प्रति अपार प्रेम है। उस राज्य के मुख्यमंत्री उसी दिन भारत के सबसे अंतिम छोर पर, जहाँ बंगाल की खाड़ी और अरब सागर मिलते हैं, समुद्र में एक बड़ी चट्टान पर श्री वल्लुवर की नवनिर्मित एक सौ तैंतीस फीट ऊंची प्रतिमा, जिसे स्टैच्यू ऑफ विजडम का नाम दिया गया है, उसका उद्घाटन करने आए थे। यह ज्ञात हुआ कि श्री वल्लुवर तमिल भाषा के एक प्रमुख कवि और दार्शनिक थे। एक लेखक के लिए इतना बड़ा सम्मान अपने आप में अनुकरणीय प्रतीत होता है।

बुद्धिमानों के इस शहर में पेरियार की स्वर्ण प्रतिमा के नीचे अंग्रेजी और तमिल में लिखे उनके विचार ''ईश्वर को भूल जाओ – मनुष्य के बारे में सोचो, कोई ईश्वर नहीं है, कोई ईश्वर नहीं है, कोई ईश्वर नहीं है। विश्वास कुछ भी नहीं है, यह व्यक्ति की निजी संपत्ति है लेकिन नैतिकता सार्वजनिक संपत्ति है। अगर हममें विश्वास नहीं है, तो हमने कुछ भी नहीं खोया है, लेकिन अगर नैतिकता चली गई, तो सब कुछ खो गया है मन प्रबुद्ध हो गया,

सचमुच, पेरियार की भूमि वैज्ञानिक चेतना के प्रचार–प्रसार के लिए प्रेरणा, शिक्षा और प्रोत्साहन का स्रोत है।

हम बोलेंगे साथी हम बोलेंगे
जब जनमत सारे झुठला दिये जाएंगे
जब फल लदे वृक्षों पर गिद्ध मंडरा जाएंगे
जब हर तरफ लठबाज़ी हावी होगी
जब हर व्यक्ति की नैतिकता चुनावी होगी
तब भी हम दीवानों की तरह डोलेंगे साथी
हम बोलेंगे साथी, हम बोलेंगे।

–ब्रिज किशोर

मोटापा एक गंभीर संकट

विश्व में मोटापा का गहराता संकट : एक अरब से अधिक लोग हैं इसके शिकार, डब्ल्यूएचओ ने जारी की पहली मार्गदर्शिका

पेप्टाइड–1 (जीएलपी–1) दवाओं पर डब्ल्यूएचओ की नई मार्गदर्शिका मोटापे को लंबे समय की बीमारी मानते हुए उपचार, समान पहुंच व स्वस्थ जीवनशैली पर जोर देती है। दुनिया भर में तेजी से बढ़ रही मोटापे की समस्या अब एक गंभीर स्वास्थ्य संकट बन चुकी है। एक अनुमान के अनुसार दुनिया में एक अरब से अधिक लोग मोटापे के शिकार हैं और केवल साल 2024 में ही मोटापे से जुड़े कारणों से करीब 37 लाख लोगों की मौत हुई।



यदि तुरंत ठोस कदम नहीं उठाए गए, तो साल 2030 तक मोटापे के मामलों में दोगुनी बढ़ोतरी होने की आशंका है। इस बढ़ती समस्या को ध्यान में रखते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने पहली बार ग्लूकागन–लाइक पेप्टाइड–1(जीएलपी–1) दवाओं के उपयोग के लिए विशेष मार्गदर्शन जारी किया है। डब्ल्यूएचओ ने मोटापे को एक चिरकालिक और बार–बार लौटने वाली बीमारी के रूप में मानते हुए कहा है कि इसे केवल जीवनशैली में बदलाव से नहीं, बल्कि चिकित्सा सहयोग से भी नियंत्रित करने की आवश्यकता जताई है।

डब्ल्यूएचओ का नया कदम

सितंबर 2025 में डब्ल्यूएचओ ने जीएलपी–11 थेरेपी को उच्च्व जोखिम वाले टाइप–टू डायबिटीज के मरीजों के लिए अपनी आवश्यक दवाओं की सूची में शामिल किया था। अब नई मार्गदर्शिका में डब्ल्यूएचओ ने मोटापे के इलाज के लिए इनके उपयोग पर दो अहम सशर्त सिफारिशें जारी की हैं। डब्ल्यूएचओ के महानिदेशक डॉ. टेड्रोस अधनोम घेब्रेयसस ने रिपोर्ट के हवाले से कहा है कि मोटापा एक बड़ा वैश्विक स्वास्थ्य संकट है, जिसे हम दुनिया भर में प्रभावी और समान रूप से नियंत्रित करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। नया मार्गदर्शन इस बात की मान्यता देता है कि मोटापा एक लंबे समय की बीमारी है, जिसके लिए पूरी उम्र व्यापक देखभाल की जरूरत होती है। दवाएं अकेले इस समस्या को हल नहीं कर सकतीं, लेकिन जीएलपी–1 के उपचार से लाखों लोगों की मदद कर सकते हैं।

डब्ल्यूएचओ की दो प्रमुख सिफारिशें

1. वयस्कों में जीएलपी–1 दवाओं का उपयोग

डब्ल्यूएचओ ने कहा कि ये थेरेपी गर्भवती महिलाओं को छोड़कर वयस्कों में लंबे समय तक मोटापे के इलाज के लिए उपयोग की जा सकती हैं। हालांकि इसे 卐सशर्त卐 इसलिए कहा गया है क्योंकि लंबी अवधि की सुरक्षा और प्रभावशीलता पर अभी सीमित शोध उपलब्ध है। इन दवाओं की कीमतें अभी भी बहुत अधिक हैं। कई देशों की स्वास्थ्य प्रणालियां अभी इसके लिए तैयार नहीं हैं। इन दवाओं की उपलब्धता में असमानता बढ़ने का खतरा है।

2. दवा के साथ व्यवहार–आधारित हस्तक्षेप

डब्ल्यूएचओ का कहना है कि जीएलपी–1 थेरेपी लेने वाले लोगों को स्वस्थ आहार, शारीरिक गतिविधि और परामर्श जैसे कार्यक्रमों से भी जोड़ा जाना चाहिए। कम–निश्चय योग्यता वाले प्रमाण बताते हैं कि ऐसा करने से उपचार का फायदा और बढ़ता है।

मोटापा : केवल दवा से हल नहीं होने वाली चुनौती

मोटापा एक जटिल बीमारी है, जो हृदय रोग, टाइप–टू डायबिटीज और कई प्रकार के कैंसर जैसी गंभीर बीमारियों का कारण बनती है। यह संक्रामक बीमारियों में भी खराब परिणामों का खतरा बढ़ाती है। केवल स्वास्थ्य ही नहीं, बल्कि अर्थव्यवस्था पर भी इसका बड़ा असर पड़ता है। अनुमान है कि साल 2030 तक मोटापे का वैश्विक आर्थिक बोझ तीन ट्रिलियन अमेरिकी

डॉलर तक पहुंच सकता है।

डब्ल्यूएचओ ने कहा कि मोटापा केवल व्यक्तिगत समस्या नहीं है, बल्कि सामाजिक और नीतिगत स्तर पर बदलाव की आवश्यकता वाली चुनौती है। इसे नियंत्रित करने के लिए तीन मुख्य स्तंभ अपनाने होंगे :

स्वस्थ वातावरण का निर्माण : ऐसी नीतियां बनें जो बेहतर भोजन, शारीरिक गतिविधि और कम कैलोरी वाले विकल्प उपलब्ध कराएं।

ज्यादा खतरे वाले लोगों की सुरक्षा- समय पर जांच और शुरुआती हस्तक्षेप।

आजन्म, व्यक्ति-केंद्रित देखभाल- चिकित्सा, पोषण, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक समर्थन के साथ।

दवाओं तक समान और आसान पहुंच

जीएलपी-1 थेरेपी आज भी महंगी हैं और कई देशों में उपलब्ध नहीं हैं। डब्ल्यूएचओ ने चेतावनी दी है कि यदि उचित नीति नहीं बनाई गई तो इन दवाओं तक पहुंच केवल अमीर लोगों तक सीमित रह जाएगी और स्वास्थ्य असमानता बढ़ेगी। अनुमान है कि 2030 तक तेजी से उत्पादन बढ़ने के बाद भी ये दवाएं उन लोगों में से केवल 10 फीसदी तक पहुंच पाएंगी जिन्हें इनकी जरूरत है।

डब्ल्यूएचओ ने वैश्विक समुदाय से आग्रह किया है कि वे :

दवा निर्माण क्षमता बढ़ाने

कीमतें कम करने

खरीदारी की सामूहिक व्यवस्था अपनाने जैसे कदम उठाएं ताकि यह इलाज अधिक लोगों तक पहुंच सके।

मोटापा एक जटिल और तेजी से बढ़ती चुनौती है। डब्ल्यूएचओ की नई मार्गदर्शिका यह दर्शाती है कि जीएलपी-1 दवाएं मोटापे के इलाज में एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हो सकती हैं। लेकिन इन दवाओं का उपयोग तभी प्रभावी होगा जब उनसे जुड़ी स्वास्थ्य प्रणाली, कीमत, पहुंच, और सामाजिक जागरूकता जैसी बाधाओं को दूर किया जाए। दवाओं के साथ-साथ स्वस्थ जीवनशैली और मजबूत नीति-समर्थन ही इस वैश्विक संकट को नियंत्रित करने का सही रास्ता है।

('डाउन-टू-अर्थ' से साभार)

***

अगरबती के धुएं से स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं

बीबीसी पत्रकार कोटेरू श्रावणी

आम दिनों में या फिर विशेषकर त्योहारों के समय बहुत-से लोग घर में अगरबत्तियाँ जलाते हैं।

लेकिन अलग-अलग वैज्ञानिक रिपोर्टें चेतावनी देती हैं कि अगरबत्तियों से निकलने वाला धुआँ और गंध स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का कारण बन सकते हैं।

कुछ समय पहले इंस्टाग्राम पर पोस्ट किए गए एक वीडियो में पल्मनोलॉजिस्ट डॉ. सोनिया गोयल ने रोज़ाना अगरबत्तियों का धुआँ साँस के जरिए अंदर जाने से होने वाली स्वास्थ्य समस्याओं के बारे में बताया।

उन्होंने कहा कि अगरबत्तियाँ फेफड़ों के लिए हल्के ज़हर की तरह होती हैं।

उन्होंने यह भी कहा कि अगरबत्तियों से निकलने वाले प्रदूषणकारी तत्व लंबे समय में पैसिव स्मोकिंग (यानी अप्रत्यक्ष रूप से सिगरेट का धुआँ अंदर जाना) जितने ख़तरनाक हो सकते हैं।

पिछले वर्ष बोस्टन में हुई अपनी वार्षिक बैठक में अमेरिकन कॉलेज ऑफ एलर्जी, अस्थमा एंड इम्यूनोलॉजी (ACAAI) ने चेतावनी दी कि अगरबत्तियों का धुआँ एलर्जी और अस्थमा वाले लोगों, बच्चों और बुज़ुर्गों के लिए गंभीर खतरा बन सकता है।

ACAAI का मुख्यालय अमेरिका के अर्कलिंगटन हाइट्स शहर इलिनॉय राज्य में है और इसके 6,000 से अधिक डॉक्टर सदस्य हैं।

इस संस्था द्वारा प्रकाशित एक पेपर में चेतावनी दी गई कि अगरबत्तियों का धुआँ सिरदर्द, श्वसन तंत्र की कार्यप्रणाली में कठिनाई, त्वचा संबंधी समस्याएँ और एलर्जिक प्रतिक्रियाएँ पैदा कर सकता है।

***

अँगूठी

–हरयाश रॉय

हरि राम चुपचाप कमरे में दाखिल हुआ और देखा कि उनका बेटा सुशील किताब पढ़ने में मग्न है। मेज पर कई किताबें बिखरी पड़ी थीं। पलंग पर भी स्कूल की कई कॉपियां इधर-उधर पड़ी थीं। ''देखो बेटा, दो दिनों के बाद तेरी बाहरवीं की परीक्षा है। अगर तुम ने 90 प्रतिशत से अधिक अंक प्राप्त कर लिए, तो समझ लेना कि जीवन में तुम्हारे लिए खुशियों के द्वार खुल जाएंगे।''

सुशील की बारहवीं कक्षा की बोर्ड परीक्षा परसों थी। उसे पता था कि लाखों छात्र परीक्षा दे रहे हैं। अगर उसका नाम मेरिट लिस्ट में आ गया, तो उसे अच्छे कॉलेज में दाखिला मिल जाएगा और उसका भविष्य उज्ज्वल हो जाएगा। उसने खूब मन लगाकर तैयारी भी की थी।

''हर प्रश्न का उत्तर अच्छे तरीके से याद करो। ध्यान से सोचो। उत्तर लिखने से पहले प्रश्न को दो बार पढ़ो ताकि उत्तर लिखने में कोई गलती न हो।'' हरि राम ने अपने बेटे को निर्देश दिया।सुशील ने अपने पिता की सलाह मान ली।

''तैयारियां पूरी हो चुकी हैं ना?'' हरि राम ने अपने आप को आश्वस्त करने की कोशिश की।

''जी पिताजी, मैं पूरी तरह तैयार हूँ। बिल्कुल भी चिंता मत कीजिए। मैं परीक्षा में इतने अच्छे अंक लाऊंगा ताकि मुझे किसी प्रतिष्ठित कॉलेज में दाखिला जरूर मिल जाए,'' सुशील ने अपने पिता को आश्वस्त किया।

''हां बेटा, मिल जाए तो बहुत अच्छा होगा।परीक्षा में जाने से पहले इस अंगूठी को जरूर पहन लेना।'' इतना कहकर हरि राम ने अपनी जेब से एक रत्न जड़ी अंगूठी निकाली और सुशील की किताबों की अलमारी पर रख दी।

''अरे... इस अंगूठी में क्या है?'' सुशील ने उलझन भरे मन से अंगूठी को देखा।

''इसमें एक कीमती पत्थर जड़ा हुआ है।''

''अगर मैं इसे पहनूं तो क्या होगा?'' सुशील ने शांत भाव से पूछा।

''इसे पहनने से दिमाग ठंडा रहता है।''

''तो क्या मेरा दिमाग गर्म रहता है?'' उसने पलटकर पूछा।

''नहीं, मेरा मतलब वो नहीं है। इससे हर काम में सफलता मिलती है। तेरी परीक्षा दो दिन बाद है। इस अंगूठी को पहनने से सरस्वती की कृपा बनी रहती है।''

सुशील चुपचाप अपने पिता की बातें सुनता रहा, कुछ नहीं बोला।

''इसे पहनने से मन एकाग्र रहता है। इससे मानसिक शांति मिलती है।'' हरि राम ने फिर कहा।

''मैं परीक्षा में ज़रूर अच्छा करूँगा। मैंने अच्छी तैयारी की है।'' सुशील का लहजा अभी भी तिरस्कारपूर्ण था।

''लेकिन इसे पहन लो। मैं ये तुम्हारे भले के लिए कह रहा हूँ।''

''इसे पहनने से ऐसा लगता है जैसे हाथ में कुछ अतिरिक्त है। इससे लिखना भी मुश्किल हो जाता है।''

''कोई समस्या नहीं है। इसे पहनने से लोगों के काम हो जाते हैं। पूरी दुनिया इसे पहनती है। मैंने इसे हरिद्वार से बाबा के आश्रम से मंगवाया है। विशेष तौर पर आपके लिए।मगर तू कह रहा हैं कि इसे पहनने से समस्या होती है।'' हरि राम ने थोड़े गुस्से से कहा।

''ठीक है... लेकिन मुझे अंगूठी पहनना पसंद नहीं है।'' इस बार सुशील ने साफ शब्दों में इनकार कर दिया।

''पसंद हो या न हो, तुझे इसे पहनना ही होगा। इससे तेरी परीक्षा बेहतर हो जाएंगी,'' हरि राम ने जोर देकर कहा।

''इसे पहनने से परीक्षा बेहतर कैसे हो सकती है?'' सुशील ने तर्क दिया।

''क्यों ... क्यों नहीं बेहतर होगी। सभी लड़के परीक्षा में पहन कर आए होंगे,'' हरि राम ने कहा।

''तुम लोग किस तरह की बातें करते हो? परीक्षा अच्छी होगी अगर अच्छे तरीके से लिखा होगा..... सही उत्तर दिए होंगे। अगर सिर्फ अंगूठी पहनने से ही मेरिट लिस्ट मिल जाती, तो सारे लड़के परीक्षा की तैयारी करने के बजाय अंगूठी पहनकर ही परीक्षा देते और पास हो जाते।'' सुशील ने मजाक भरे लहजे में कहा।

सुशील जानता था कि उसके पिता प्रतिदिन इन आश्रमों का चक्कर लगाते रहते थे। कभी एक बाबा के पास, कभी दूसरे

के पास। इस कारण घर के बहुत सारे काम रुक पड़े थे। उनकी आमदनी अच्छी थी। फिर भी, उसे यह समझ नहीं आ रहा था कि वे बार-बार बाबाओं के पास क्यों जाते रहते थे।

वह जानता था कि अगर उसके पिता अपनी ज़िद पर अड़े रहे तो वे अपनी बात मनवा ही लेंगे। पूरा घर उनके आदेशों का पालन करता था। वे अक्सर ही घर में हवन करवाते रहते थे। कभी कोई सुंदर कथा सुनाई जाती, कभी अखंड पाठ, कभी कुछ और। लेकिन उसे इन सब बातों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह अपनी पढ़ाई में डूबा रहता था। इस मामले में भी सुशील ने तय कर लिया था कि वह अंगूठी नहीं पहनेगा। वो सोचता है कि भला अंगूठी पहनने से उसकी परीक्षा में क्या फायदा हो सकता है?

''अच्छा मैं देखता हूं।'' सुशील ने अनिच्छा से कहा।

''देखने-दुखना कुछ नहीं। बस इसे पहन लो। हो सके तो इसे रात में पहनकर सो जा ताकि सुबह उठने पर तेरा मन पूरी तरह शांत हो जाए।''

सुशील ने कुछ नहीं कहा। पिताजी चुपचाप कमरे से बाहर चले गए।

उनके जाते ही सुशील ने अपने कमरे का दरवाजा बंद कर दिया और उसे अंदर से कुंटी लगा ली।

हरि राम के मन में शंकाएं उठने लगी थी। ड्राइंग रूम में बैठी उनकी पतनी सब कुछ देख रही थी। पति के चेहरे पर गुस्सा देखकर उसने कहा, ''तुम उसके पीछे क्यों पड़े रहते हो? अगर वो इसे नहीं पहनना चाहता , तो न पहने।''

''मैं यह बात इसके भले के लिए कह रहा हूँ। इसे पहनने से क्या सम्मान कम होगा? बाबा ने इसे कितनी मुश्किल से तैयार किया था, तेरे को पता नहीं हैं।''

''ये आधुनिक बच्चे हैं। नहीं विश्वास इन बातों में।'' उसने हरि राम को समझाने की कोशिश की।

''नहीं विश्वास करते तो यह स्थिति है,'' हरि राम ने गुस्से से कहा।

''तुम क्यों परेशान हो रहे है ? अपने आप समझ जाएगा,'' पत्नी ने समझाने की कोशिश की।

''उसे कुछ समझ नहीं आएगा। ये चीज़ें हज़ारों सालों से चली आ रही हैं। अगर इनका कोई उपयोग नहीं होता, तो मेरे पिता इन्हें मुझे क्यों पहनाते? तुम इन्हें क्यों पहन रही हो?'' हरि राम ने अपनी उंगलियाँ अपनी पत्नी को दिखाते हुए कहा। सचमुच, उनके दाहिने हाथ की चार उंगलियों में से दो में लाल पत्थरों से जड़ी अंगूठियाँ थीं और एक में हरे पत्थरों से जड़ी अंगूठी। चौथी उंगली में सोने की अंगूठी थी।

उनकी बातें सुनकर उनकी पत्नी की नजर भी अपनी उंगलियों पर पड़ी। उसने भी हर उंगली में अंगूठी पहन रखी थी। कुछ अंगूठियों में नीलम, कुछ में पन्ना और कुछ में हीरा जड़ा था।

''बाबा जी ने यह भी कहा था कि अगर वो इसे हर समय नहीं पहनता, तो मत पहने, लेकिन परीक्षा के दौरान इसे अवश्य पहने। उसको सफलता अवश्य मिलेगी। चाहे बाबा जी ने कहा हो या न कहा हो।''

पत्नी ने सहमति में सिर हिलाया।

''अब तुम्हें उसे समझाना होगा कि परीक्षा देने जाते समय उसे अंगूठी पहननी होगी।'' उसने अपनी पत्नी से आदेशात्मक स्वर में कहा।

अगली सुबह सुशील की मां ने देखा कि उसने अंगूठी नहीं पहनी हुई है। उसने कहा, ''बेटा, कल तुम्हारे पिता ने तुम्हें पहनने के लिए अंगूठी दी थी, उसे पहन लो।''

''अंगूठी क्यों पहननी है?'' सुशील ने कड़े स्वर में कहा।

''मानो या न मानो, इसे अपने पिता की बात मानने के तौर पर पहन लो। वे कल की बात से बहुत नाराज़ हैं।'' माँ ने समझाने की कोशिश की।

''यह उन्हें खुश करने के लिए इसे पहनने की बात नहीं है। मैं ऐसी चीज को कैसे स्वीकार कर सकता हूँ जिसका तर्क और विवेक से कोई लेना-देना नहीं है?'' सुशील ने अपनी माँ को समझाते हुए कहा।

''हर चीज को तर्क के आधार पर मत परखो।'' माँ ने फिर समझाया।

''क्यों? मैं वही करूंगा जो तार्किक रूप से सही है।''

''जब वैज्ञानिक कोई भी नया प्रोजेक्ट शुरू करने से पहले मंदिरों में जाते हैं, नारियल फोड़ते हैं, पूजा करते हैं, नीलम, मोती और न जाने क्या-क्या पहनते हैं, तो तर्क कहाँ चला जाता है?''

''वे वैज्ञानिक होते हुए भी इतना अवैज्ञानिक काम कर

रहे हैं। मैं इसको ठीक नहीं समझता और मैं ही पसंद करता हूं। लेकिन मैं ऐसा कुछ नहीं करूंगा।'' सुशील अपनी बात पर अड़ा रहा।

''कम से कम हमारी खुशी के लिए ये अंगूठी को पहन लो।'' सुशील अपनी माँ की इस बात पर कुछ नहीं बोला। ''लाओ, अंगूठी कहाँ है? मैं खुद तेरे को पहना देती हूं ।''

''यह यहीं कहीं होगी।'' माँ ने चारों ओर देखा। अंगूठी एक किताब के नीचे पड़ी थी।

''हाथ आगे करो। मैं तुम्हें पहना दूं।''

सुशील घबरा गया और बोला, ''तुम जाओ, मैं इसे खुद पहन लूंगा।''

''ठीक है, कल परीक्षा में जाने से पहले मुझे दिखा देना।'' इतना कहकर माँ कमरे से चली गई।

वह गई और अपने पति हरि राम को बताया, ''सुशील अंगूठी पहनने के लिए तैयार है।''

''वह कल परीक्षा देने अंगूठी पहनकर जाएगा।'' यह सुनकर हरि राम के मन को शांति आई।

जैसे ही सुशील अपनी माँ के कमरे से निकला, उसने अंगूठी को किताबों की अलमारी के पीछे ऐसी जगह छिपा दिया जहाँ वह किसी को न मिले। फिर उसने सोचा कि उसे कल की परीक्षा के संभावित प्रश्नों को एक बार फिर याद कर लेना चाहिए और उन्हें लिख लेना चाहिए। उसने पूरी रात सभी प्रश्नों के उत्तर लिखने का अभ्यास किया। मन को शांत करने के बाद, उसने सोचा कि वह कल सुबह परीक्षा में अवश्य सफल होगा।

अगली सुबह वह जल्दी उठा और स्नान करने के बाद परीक्षा देने चला गया। उसके माता-पिता दोनों ने देखा कि अंगूठी उसकी उंगलियों में नहीं थी। उसके पिता को अचानक गुस्सा आ गया, लेकिन उन्होंने इस समय उनसे बहस करना उचित नहीं समझा। वे सदमे में ही रहे।

परीक्षा में प्रश्न पत्र देखते ही सुशील का चेहरा खुशी से चमक उठा क्योंकि उसने इन सभी प्रश्नों के उत्तर याद किए हुए थे। उसने पूछे गए सभी प्रश्नों के उत्तर लिखने शुरू किया। बिना अंगूठी वाला उसका हाथ बिजली की गति से उन प्रश्नों के उत्तर लिखने में मग्न था। परीक्षा देकर घर लौटते समय वह बहुत खुश था... बेहद खुश।

'सबसे खतरनाक..'

-सचिन जैन

भीड़ अकेली नहीं होती
भीड़ का एक राजा होता है
भीड़ से भी खतरनाक
सामने न दिखाई देने वाला उसका राजा,
भीड़ अनियंत्रित नहीं होती
भीड़ हर पल निर्देशित होती है सबसे खतरनाक होता है
भीड़ के निर्देशक का दिखाई न देना।

भीड़ के हथियार कारखाने से नहीं आते
भीड़ के हथियार बनाने के कारखाने हमारे घरों में,
हमारी बस्तियों में
लगाये जा चुके हैं,
भीड़ उद्देश्य हीन भी नहीं होती

भीड़ का उद्देश्य होता है -
आजादी के विचार का कत्ल कर देना।

रोटी की विकराल भूख से
अब ज्यादा खतरनाक है
खबर के बाजार,
नफरत की खुराक,
खतरनाक वो वक्त होता है
जब सल्तनत भीड़ की सरपरस्त हो जाती है।
कैसे लड़ेंगे जंग उस भीड़ से जो मजहब की पनाह में पलकर बड़ी होती है,
सच तो यह है राजा भी दिखाई देता है
सच तो यह भी है नियंत्रक भी दिखाई देता है
सबसे खतरनाक होता है इन्हें देखकर अनदेखा करना।
इन्हें अपने अस्तित्व का मानक स्वीकार कर लेना
सबसे खतरनाक होता है
भीड़ से सहज हो जाना,
सबसे खतरनाक होता है
भीड़ से बचने के लिए भीड़ का हिस्सा बन जाना।

***

नास्तिकता और तर्कशीलता

नास्तिकता यह एक ऐसी विचारधारा है जो ईश्वर, देवी-देवताओं, आत्माओं, भूतों, स्वर्ग और नरक आदि जैसी अलौकिक शक्तियों और अवधारणाओं में विश्वास नहीं करती।

इतिहास के हर दौर में, विभिन्न वर्गों और सामाजिक समूहों ने अपने वर्ग हितों की पूर्ति के लिए नास्तिकता को एक वैचारिक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया है। नास्तिकता प्रकृति के भौतिकवादी विचारों से गहराई से जुड़ी हुई है। दास प्रथा के दौरान नास्तिकता एक विचारधारा के रूप में विकसित हुई। नास्तिकता के बड़े तत्व यूनानी दार्शनिकों बेलुस, हरक्यूलिस, डेमोक्रिटस, एपिकुरस, लुटाक्रिस के लेखन में मिलते हैं, और भारत में चार्वाक भी नास्तिक विचारधारा के समर्थक थे। इसके अनुसार, सभी घटनाओं को प्राकृतिक कारणों से समझाने का प्रयास किया गया। बेशक, उस समय की नास्तिकता सरल, कल्पनाशील और अनियमित थी क्योंकि मध्य युग में चर्च और धर्म का वर्चस्व था और नास्तिकता एक विचारधारा के रूप में विकसित नहीं हो सकी। यूरोप के बुर्जुआ नास्तिकों ने चर्च की प्रतिक्रियावादी प्रकृति को उजागर करके सामंतवाद के विरुद्ध संघर्ष में ऐतिहासिक भूमिका निभाई। आज नास्तिकता का कार्य है आध्यात्मिकता या धर्म के अस्तित्व और फलने-फूलने के कारणों का सामाजिक और ज्ञान शास्त्री दृष्टिकोण से विश्लेषण करना, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सामाजिक जीवन में उनकी प्रासंगिकता और भूमिका की जाँच करना और उन्हें जनता के समक्ष प्रस्तुत करना। ताकि वे धार्मिक पूर्वाग्रहों से बाहर निकल सकें और अपने वास्तविक हितों की लड़ाई में अग्रिम पंक्ति में लामबंद हो सकें। नास्तिकता के लिए निरंतर तर्कशीलता की आवश्यकता है, अन्यथा नास्तिक के आस्तिक बनने का खतरा रहता है।

तर्कशीलता : आम बोलचाल में, तर्कवाद ज्ञानमीमांसा की वह प्रवृत्ति है जिसके अनुसार कोई भी विश्वास, विचार या मत तब तक स्वीकार्य नहीं है जब तक वह तर्क और तर्कसंगत दलीलों द्वारा समर्थित न हो। तर्कशील साहित्य में, तर्कशीलता शब्द का प्रयोग अंग्रेजी शब्द 'रेशनलिज़्म' के अनुवाद के रूप में किया जाता है। व्यवहारिक रूप से, हमारे लिए तर्कशीलता का अर्थ विवेकशीलता है , जो मानव जाति के संचित ज्ञान के तुलनात्मक अध्ययन से उत्पन्न होती है, जिसमें किसी भी अप्रमाणित और तर्क का समर्थन न करने वाले विश्वास या मत के लिए कोई स्थान नहीं है। यदि हम इसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि पर गौर करें, तो पाते हैं कि तर्कशीलता ज्ञान सिद्धांत की वह पद्धति थी जिसमें सत्य का ज्ञान अनुभव से नहीं, बल्कि मन से आता था, क्योंकि मन को वास्तविकता से परे, स्वतंत्र और स्वयं में सर्वज्ञ माना जाता था। इसके समर्थकों में दार्शनिक डेसकार्टेस शामिल थे। इस व्याख्या के अनुसार, तर्कशीलता अनुभव के विरुद्ध था, जिसका अर्थ है कि ज्ञान का अमल से कोई संबंध नहीं है। हालाँकि, तर्कशीलता की यह अवधारणा गणितीय वास्तविकताओं और गणितीय प्राकृतिक विज्ञान की विशिष्टता को समझाने की आवश्यकता से उत्पन्न हुई। सत्रहवीं शताब्दी में, इसके अनुयायी डेसकार्टेस, स्पिनोज़ा और लाइबनिज़ थे। अठारहवीं शताब्दी में, कांट, नीत्शे, सेलिंग और हेगेल इसके समर्थक बने। इस प्रकार के तर्कशीलता की सीमा यह थी कि यह अनुभव से प्राप्त सच्चे ज्ञान को नकारता था। इस विरोधाभास का समाधान मार्क्सवाद ने किया, जिसमें ज्ञान और व्यवहार को अलग-अलग नहीं बल्कि एक द्वैतवादी संबंध में देखा और समझाया गया। तर्कशीलता, बुद्धि में विश्वास, वास्तविकता के तार्किक निर्णय और तर्क की शक्ति में विश्वास में व्यक्त होता है।

अमूल्य संपत्ति

क्या मनुष्य का सबसे अनमोल और अमूल्य धन उसका जीवन है, जो उसे केवल एक बार मिलता है? उसे इस प्रकार जीने दो, कि बीते हुए वर्षों का पीड़ादायक पछतावा उसे कभी न सताए। व्यर्थ अतीत के अहसास की शर्म उसे कभी न सताए।

एक व्यक्ति को इस प्रकार जीना चाहिए कि अपनी अंतिम सांस के समय वह कह सके कि उसका जीवन, उसकी सारी शक्ति, दुनिया के सर्वश्रेष्ठ आदर्श, यानी मानव स्वतंत्रता के संघर्ष के लिए समर्पित रही है।

-निकोलाई ओस्ट्रोव्स्की

तारों का हमसफर : स्टीफन हॉकिंग

-अवतार गोंदारा



यह कहावत पूरी दुनिया में मशहूर है कि 'तंदुरुस्त शरीर में ही तंदुरुस्त दिमाग हो सकता है।' तारा, भौतिक और ब्रह्मांड विज्ञानी स्टीफन हॉकिंग पर यह कथन सत्य साबित नहीं होता है। उन्होंने असल में इस से उल्ट साबित किया कि एक तंदुरुस्त दिमाग भी शरीर पर असर डालता है और बीमार शरीर को भी संभाल सकता है, उसका इस्तेमाल कर सकता है। वे इस सदी के सबसे मशहूर और चर्चित वैज्ञानिक थे। 'भगवान' के होने को लेकर अपने बयानों की वजह से वे हमेशा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा का केंद्र रहे हैं।

स्टीफन हॉकिंग एक बहुप्रतिभाशाली व्यक्तित्व थे। वे एक अध्यापक, शोधकर्ता , चिंतक दार्शनिक और समाज सेवी के तौर पर अपनी पहचान बनाते हैं। उनकी शोहरत सिर्फ उनकी वैज्ञानिक कामयाबियों की वजह से ही नहीं, बल्कि वैज्ञानिक खोजों को आम लोगों तक पहुंचाने और उनका नज़रिया वैज्ञानिक बनाने की उनकी कोशिशों की वजह से भी है।

बचपन:- स्टीफन हॉकिंग का जन्म 8 जनवरी, 1942 को इंग्लैंड के ऑक्सफोर्ड में हुआ था। यह दिन तारा विज्ञानी गैलीलियो की 300वीं सालगिरह के साथ मेल खाता था। उनके पिता एक डॉक्टर थे और उनकी माँ ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी की पहली महिला ग्रेजुएट थीं। ज़्यादातर घरों की तरह, बच्चों को खिलौनों से बहलाने या टीवी के सामने बिठाने के बजाय इन के घर पढ़ने-पढ़ाने का माहौल था। दोपहर के खाने के समय भी यहाँ शांति बनी रहती और सभी साथ-साथ में किताबें पढ़ रहे होते । हालाँकि उनके परिवार का पुश्तैनी धर्म ईसाई था, लेकिन घर का माहौल पढ़ाई-लिखाई वाला और धर्मनिरपेक्ष था। इस बात की गवाही कई बातें देती हैं। जैसे, घास पर लेटा-लेटा, वो अपनी माँ के साथ तारों को देखता रहता और उनके बारे में अपनी मां से प्रश्न पूछता रहता था। वो और उनकी बहन खेल- खेल में विभिन्न प्रकार के प्रयोग करते रहते। सोलह वर्ष की आयु में हॉकिंग ने स्पेयर पार्ट्स को जोड़कर एक घरेलू कंप्यूटर बनाया था।

शिक्षा और शादी : आम प्रतिभाशाली लोगों की तरह उन्हें स्कूल की पढ़ाई में ज़्यादा दिलचस्पी नहीं थी, लेकिन उन्हें चीज़ों को समझने और सीखने का शौक था। उनके सहपाठी उन्हें 'आइंस्टीन' पुकारते थे। उन्होंने 1963 में भौतिक और रासायनिक विज्ञान में BA पूरी की। पढ़ाई के साथ-साथ वे खोलों में भी हिस्सा लेते थे। 21 वर्ष की आयु में, ऑक्सफ़ोर्ड में पढ़ते समय वे गिर गए और इलाज के दौरान पता चला कि वे एक लाइलाज बीमारी, एमियोट्रोफिक लेटरल स्क्लेरोसिस से पीड़ित हैं। जिसकी वजह से भविष्य में उनके हाथ-पैर पैरालाइज़ हो जाएंगे और उन पर उनका कोई नियंत्रण नहीं रहेगा। डॉक्टरों का मानना था कि वे एक-दो साल में चल पाएंगे। लेकिन आम लोगों की तरह उन्होंने हार नहीं मानी, न ही उन्होंने आत्महत्या करने के बारे में सोचा। उनकी सभी वैज्ञानिक उपलब्धियां इसी बीमारी का पता चलने के बाद की हैं। 1966 में, ब्रह्मांड विज्ञान में PhD पूरी करने के बाद, उन्होंने ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी में नौकरी शुरू कर ली। फिर, वे तरक्की करते हुए प्रोफ़ेसर के पद तक पहुँचे, जहाँ कभी न्यूटन जैसे दुनिया के मशहूर विज्ञानी पढ़ाया करते थे । इस दौरान, उन्होंने दो शादियाँ कीं। पहली शादी जेन वाइल्ड नाम की लड़की से हुई, जो धार्मिक विचारों वाली महिला थी। इस शादी से तीन बच्चे हुए। स्टीफन की शारीरिक हालत और अलग-अलग विचारों की वजह से यह रिश्ता बीच में ही टूट गया और उनका तलाक हो गया। दूसरी

शादी एलेन मेसन नाम की एक नर्स से हुई थी।

शोध कार्य : खुद पर तरस खाकर हमदर्दी पाने के बजाय, वह अपनी बढ़ती बीमारी का सामना ज़बरदस्त इच्छा-शक्ति से करते हैं। उनका पढ़ने, पढ़ाने, लिखने, बोलने और एक समाज सेविक के तौर पर शानदार इतिहास है। वैज्ञानिक शोध के प्रति अपने समर्पण के बारे में वह कहते हैं, 'मुझे लगता है कि मेरी सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि 'ब्लैक होल' सिर्फ़ काला नहीं। इस शोध से जनरल रिलेटिविटी और क्वांटम मैकेनिक्स के बीच के विरोधाभास को सुलझाने का रास्ता खोलता है।

1. उनका अपने सहयोगी शोधकर्ता रोजर पेनरोज़ के साथ लिखा गया पेपर 'सिंगुलैरिटी एंड ज्योमेट्री ऑफ़ स्पेस टाइम' सबका ध्यान खींचता है और उन्हें उस साल का 'एडम प्राइज़' दिया जाता है। 1968 में, वह अपने इस सहयोगी शोधकर्ता के साथ कुदरत के 'एक बिन्दु ' से शुरू होने का विचार लेकर आते हैं, जो बाद में 'बिग बैंग' सिद्धांत की व्याख्या से चर्चित होता है।

2. इसके बाद, 'ब्लैक होल' की व्याख्या के बारे उनके आर्टिकल हैं, जिसमें वह इनकी संरचना और प्रक्रिया के बारे में विस्तार में बताते हैं। वह इस बारे में प्रचलित धारणा को चुनौती देते हैं, जिसके अनुसार ब्लैक होल ठंडे होते हैं। स्टीफन थ्योरी ऑफ़ रिलेटिविटी और क्वांटम मैकेनिक्स की मदद से यह नतीजा निकालते हैं कि वे गर्म होते हैं और उनसे तरंगे निकलती हैं।

3. 1973 में, अपनी किताब 'द लार्ज स्केल स्ट्रक्चर ऑफ़ टाइम स्पेस' के पब्लिकेशन के बाद, उन्हें रॉयल सोसाइटी का फेलो चुना गया। इसके बाद, उनकी बोलने की क्षमता लगभग पूरी तरह खत्म हो गई और सिर्फ़ कुछ करीबी लोग ही उन्हें समझ पाते थे, जिनकी मदद से वह दूसरों से बातचीत करते थे। 1985 में, निमोनिया के अटैक के दौरान, उनका ऑपरेशन हुआ और उनकी गले की आवाज हमेशा के लिए खत्म हो गई।

4. इस मुश्किल में वो विज्ञान की मदद लेतें हैं। उनके लिए एक कंप्यूटर और एक बोलने वाला यंत्र बनाया जाता है, जिसकी मदद से उन्हें ज़िंदगी भर दूसरों से बातचीत करनी होती है और बहस में हिस्सा लेना होता है। इस हालत में भी उनका शोध और रचनात्मक कार्य जारी रहता है। उनकी देखभाल कर रही मेडिकल टीम के हवाले से बताया गया है कि स्टीफन हॉकिंग का नियंत्रण सिर्फ़ उनके दाहिने गाल की मांसपेशी पर निर्भर था, जिसे वे दांत भींचकर चलाते थे और एक सेंसर की मदद से स्क्रीन पर कर्सर को निर्देशित करते थे और चाहे गए शब्द पर टिक करते थे और इस तरह हर शब्द के साथ वाक्य बनाते थे। ऐसे में उनकी किताब 'ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ़ टाइम, फ्रॉम द बिग बैंग टू ब्लैक होल' पब्लिश होती है, जिसमें आम लोगों को समझाने के लिए समय -स्पेस को आसान भाषा में समझाया गया है। यह किताब कई भाषाओं में अनुवाद होकर दुनिया की सबसे ज़्यादा बिकने वाली किताबों में से एक है।

5. 2007 में, उन्होंने बच्चों में विज्ञान में दिलचस्पी बढ़ाने के लिए अपनी बेटी की मदद से 'जॉर्जेस सीक्रेट की टू द यूनिवर्स' पब्लिश की।

6. उनकी आखिरी किताब 'द ग्रैंड डिज़ाइन', जिसके वे सहयोगी लेखक थे,जिसमें वे यह विचार देते हैं कि ब्रह्मांड के अपने आप बनने में 'भगवान' जैसी किसी शक्ति की ज़रूरत नहीं है।

नज़रिया- जहाँ ज़्यादातर शोधकर्ता दुनिया से कटे हुए, अपने शोध कार्य में व्यस्त रहतें हैं, वहीं स्टीफन हॉकिंग एक ऐसे इंसान हैं जो लोगों के बीच विज्ञान का प्रचार,प्रसार करते हैं, ब्रह्मांड की शुरुआत और अंत से जुड़े 'भगवान' जैसे मुद्दों पर बोलते हैं और सामाजिक मुद्दों पर खुलकर बोलते हैं।

उन्हें ज़िंदगी में नज़रिए की अहमियत का एहसास था। एक बार उन्होंने अपनी पहली पत्नी से पूछा, 'बताओ, क्या मैं शंकावादी हूँ या नास्तिक ?' असल में, आम मध्य वर्ग के बुद्धिजीवियों की तरह, उन्होंने शुरू में अपना नज़रिया बीच का ही रखा। वह कभी-कभी 'भगवान' के होने के बारे में गोलमोल बातें करते थे, जिससे आदर्शवादी लोगों का दिल बहल जाता था, लेकिन उन्होंने वैज्ञानिक नतीजों के आधार पर कुदरत के नियमों में किसी बाहरी ताकत के दखल को भी नकार दिया। उनका नास्तिक बनने का विकास देखा जा सकता है।

अपनी किताब 'ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ़ टाइम' में वह लिखते हैं, 'जब हम भगवान के मन को जान लेंगे, तो यह इंसानी समझ की आखिरी जीत होगी।'

2014 में स्पेनिश अखबार 'एल मुंडो' को दिए एक

इंटरव्यू में वह इस बात को बीच में टाल देते हैं। 'भगवान के मन को जानने' के बारे में अपनी बात को साफ करते हुए, वह कहते हैं, 'मेरा मतलब था, हम वह सब कुछ जान लेंगे जो 'भगवान' जानते हैं, लेकिन वह मौजूद नहीं हैं। इसीलिए मैं नास्तिक हूँ।'

एक टीवी इंटरव्यू के दौरान अपनी बात समझाते हुए, स्टीफन कहते हैं, ''भगवान को कैसे परिभाषित किया जाए, यह कुदरती नियमों का रूप है।'' बेशक, ज़्यादातर लोग भगवान के बारे में ऐसा नहीं सोचते। वे उन्हें एक ऐसे इंसान के तौर पर देखते हैं जिसके साथ आपका व्यक्तिगत रिश्ता हो सकता है। जब आप इंसानी ज़िंदगी की छोटी सी बात को बड़े ब्रह्मांड के हिसाब से देखते हैं, तो यह नामुमकिन लगता है।

उन्होंने 2011 में द गार्डियन अखबार को दिए एक इंटरव्यू में इस बात की पुष्टि करते हुए कहा, ''मुझे मौत से डर नहीं लगता, न ही मुझे मरने की कोई जल्दी है। उससे पहले मुझे बहुत कुछ करना है। मैं दिमाग को एक कंप्यूटर की तरह समझता हूं, जिसके कुछ हिस्से एक दिन काम करना बंद कर देंगे। टूटे हुए हिस्सों के लिए कोई स्वर्ग या नर्क नहीं है। ये उन लोगों के लिए परियों की कहानियां हैं जो अंधेरे से डरते हैं।''

विचारों की आज़ादी का पक्ष लेते हुए, हॉकिंग ने डिस्कवरी चैनल को दिए एक इंटरव्यू में कहा, ''हम सभी किसी भी बात पर विश्वास करने के लिए आज़ाद हैं। मेरा मानना है कि यह एक साधारण सी व्याख्या है - कोई 'भगवान' नहीं है।'' ब्रह्मांड को न कोई बना सकता, न ही कोई हमारा भविष्य तय कर सकता है। जब कोई उसकी बीमारी के बावजूद ज़िंदा रहने को 'चमत्कार' कहता है, तो उसका जवाब होता है, ''मैं नास्तिक हूं। धर्म ही चमत्कारों में विश्वास करता है, जो विज्ञान से मेल नहीं खाता।''

उनके एक स्टूडेंट का कहना है कि स्टीफन हॉकिंग लोगों को प्रेरित करते थे और विज्ञानिक जांच के महत्व पर ज़ोर देते थे।

शारीरिक रूप से अक्षम बच्चों को शिक्षा देने, एजुकेशनल इंस्टीट्यूशन में पढ़ने और रहने की सुविधा देने और ब्रिटिश सरकार की हेल्थ सुविधाएं वापस लेने की कोशिशों के खिलाफ खड़े होने की हॉकिंग की कोशिशें, सामाजिक सरोकारों से उनके जुड़ाव को दिखाती हैं।

हॉकिंग का 14 मार्च, 2018 को 76 साल की उम्र में निधन हो गया, इत्तेफाक से इसी तारीख को आइंस्टीन का जन्म हुआ था।

कमी की वजह से हार मान बैठे लोगों के लिए स्टीफन हॉकिंग एक प्रेरणा स्रोत है। उनका मोटो है 'जो आपके पास नहीं है, उसकी चिंता मत करो, बल्कि जो आपके पास है उसका फायदा उठाओ।' उनके हाथ-पैर जवाब दे गए, लेकिन उनका दिमाग काम करता रहा, जिसका उन्होंने पूरा फायदा उठाया।

स्टीफन हॉकिंग ने कहा था :

1. शारीरिक तौर पर आरोग लोगों को मेरी सलाह है कि वे उन चीजों पर ध्यान केंद्रित करें जिनमें आपकी डिसेबिलिटी दखल न दे, इसे अपने दिमाग पर भारी न पड़ने दें।

2. मैंने देखा है कि जो लोग हर बात पहले से तय होने पर यकीन करते हैं, जिसे वे सोचते हैं कि बदला नहीं जा सकता, वे ही लाल बत्ती देखकर सड़क पार करते हैं।

3. 'ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम' लिखते समय मुझे बहुत संघर्ष करना पड़ा। उस समय मैं निमोनिया से जूझ रहा था, लेकिन मेरा मानना है कि वैज्ञानिकों का यह फर्ज है कि वे लोगों को विज्ञान के बारे में शिक्षित करें।

लघुकथा

रमन ने सबह-सुबह टी वी पर

खबरें सुनने के बाद, अखबार में ज्योतिषी द्वारा दिए गए उस दिन के राशिफल को पढ़ा,जिसमें लिखा था कि आज का दिन उस के लिए बेहद सम्मान का दिन है। उसने अपनी मोटरसाइकिल को उठाया और उस पर एक खाली गैस सिलेंडर रख भरवाने के लिए, शहर की ओर चल पड़ा। शहर में प्रवेश करते ही पुलिस ने उसको रोक कर उसके मोटरसाइकिल के दस्तावेजों की जांच की जोकि पूरे नहीं थे । पुलिस ने उसको खूब डांटा और पांच सौ रुपये का चालान भी काट दिया। वो बहुत शर्मिंदा था अब उसे राशिफल के झूठ की समझ आ गई थी। जब वह घर आया, तो सबसे पहले उसने राशिफल वाले अखबार को फाड़कर कूड़ेदान में फेंक दिया, इस तरह आज उसने वर्षों के बाद ज्योतिष के बोझ से मुक्ति पाई।

-डॉ. अवतार सिंह ढिंडसा

तर्कशील गतिविधियां

पुंडरी में तर्कशील मेले का आयोजन

तर्कशील सोसायटी हरियाणा की तरफ से 30 नवंबर 2025को पुंडरी में तर्कशील मेले का आयोजन किया। इस मेले के मुख्य आकर्षण अंधविश्वासों पर प्रहार करते नाटक और चमत्कारों का पर्दाफाश रहे।

इस राज्यस्तरीय कार्यक्रम में हरियाणा के विभिन्न इलाकों से लोगों ने शिरकत की। सभी तर्कशील इकाइयों में बेहद उत्साह दिखाई दिया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि समाजसेवी श्री सतबीर भाना जी थे उन्होंने अपने संबोधन में लोगों को अंधविश्वास से निकल कर मेहनत के बल पर आगे बढ़ने का आह्वान किया,उन्होंने कहा कि तर्कशील सोसायटी लोगों को अंधविश्वास से निकालने का महत्वपूर्ण कार्य कर रही है।

मोहाली की नाटक टीम,जो प्रसिद्ध रंगकर्मी गुरशरण सिंह के समय बनी थी,उसके संचालक एवं प्रसिद्ध नाटकर्मी,टी वी और फिल्मों के प्रसिद्ध अभिनेता ,निर्देशक एकत्र सिंह के निर्देशन में नाटकों का मंचन हुआ जिसमें पंडित बलाकी राम और देव पुरुष जो हार गए नाम के नाटक मंचित किए गए जिसमें वहमों , भ्रमों एवं अंधविश्वास से निकल कर मेहनत के बल पर आगे बढ़ने का संदेश दिया गया। मेले में तर्कशील सोसायटी एवं नौजवान भारत सभा की तरफ से पुस्तक प्रदर्शनी भी लगाई गई।

इस मेले में मंच संचालन श्री मति शशी ने किया। मेले में राज्य कार्यकारणी के सदस्य डाक्टर राजेश पेगा,कृष्ण लाल, गुरमीत अंबाला, अनुपम सिंह, फरियाद सिंह, कृष्ण गर्गईश्वर सिंह, कृष्ण राजौंद, राजेश, डाक्टर परमानंद आदि उपस्थित रहे।

इस आयोजन की सफलता के लिए पुंडरी इकाई के सदस्य श्री कृष्ण चंद,मान सिंह,रामफल,मोनू एवं राज्य सचिव बलजीत भारती का अहम योगदान रहा। हर्ष उल्लास से सम्पन्न यह मेला इलाके में अपनी अमिट छाप छोड़ गया।

रिपोर्ट : गुरमीत अंबाला

***

वैज्ञानिक चेतना परख परीक्षा (हिंदी) का सफल आयोजन –कृष्ण कायत

27 नवंबर को तर्कशील सोसायटी पंजाब के तत्वावधान में विद्यार्थियों के लिए वैज्ञानिक चेतना परख परीक्षा का आयोजन किया गया। तर्कशील सोसायटी, पंजाब द्वारा प्रतिवर्ष यह परीक्षा पंजाबी माध्यम में आयोजित की जाती रही है व इसके लिए पंजाबी माध्यम की पुस्तक तैयार की जाती थी जिससे पंजाब के साथ लगते हिंदी भाषी क्षेत्रों व हरियाणा के स्कूलों के विद्यार्थी इस मुहिम से वंचित रह जाते थे। इसलिए इस बार सोसायटी द्वारा पहली बार वैज्ञानिक चेतना परीक्षा के लिए पुस्तक हिन्दी भाषा में तैयार करके उपलब्ध करवाई गई। विद्यार्थियों ने जोश पूर्ण ढंग से इस परीक्षा में भाग लिया। सिरसा जिला में कुल पांच सौ पुस्तकें वितरित की गईं जिसमें तर्कशील सोसायटी इकाई कालांवाली द्वारा तीन सौ पुस्तकें आरोही मॉडल स्कूल जललाना, सीनियर स्कैंडरी स्कूल चोरमार खेड़ा, मिठडी, ओढ़ा, मतड़, भावदीन, व गुरुनानक सी. स. करीवाला के विद्यार्थियों ने इस परीक्षा में भाग लिया। डबवाली इकाई द्वारा दो सौ पुस्तकें वितरित की गईं। डबवाली के तीन स्कूलों में इस परीक्षा का सफलतापूर्वक आयोजन किया गया। तर्कशील पत्रिका पंजाबी के संपादक राजपाल व ज्ञान सिंह वरिष्ठ साथियों ने परीक्षा केंद्रों का निरीक्षण भी किया तथा स्कूलों के अध्यापकों व विद्यार्थियों से वैज्ञानिक चेतना परख परीक्षा बारे चर्चा भी की।

पवन कुमार,जगतार सिंह, शमशेर चोरमार, अजायब जलालाना, कुलदीप जलालाना, सतनाम फ़ग्गू,वीर सिंह, रिशपाल सिंह, संतोष कुमार, कृष्ण कायत, कुलदीप सिरसा आदि तर्कशील साथी व अध्यापक साथियों का विशेष सहयोग रहा।

इसी तरह पटियाला इकाई से रामकुमार और कुलवंत कौर के प्रयास से स. प्रीतम सिंह मेमोरियल स्कूल बदसूई कैथल के 61 विद्यार्थियों ने इस परीक्षा में भाग लिया। स्कूल के प्रिंसिपल गुरविंदर सिंह और अध्यापक बलजिंदर सिंह का सराहनीय सहयोग मिला।

चंडीगढ़ से ही साथी कृष्ण राही और मोहाली ईकाई से जसवंत मोहाली द्वारा चंडीगढ़ के सीनियर सेकेंडरी स्कूल खुडा लाहौरा के मानयोग प्रिंसिपल श्री कुलदीप सिंह बाठ के सहयोग से विद्यार्थी चेतना की परीक्षा करवाई गई जिसमें 54 विद्यार्थियों ने हिस्सा लिया। इस तरह हिंदी मध्यम वाले तकरीबन 700 छात्रों तक ''वैज्ञानिक चेतना से काटें अंधविश्वास का जाल'' नाम की इस पुस्तिका को ले जाना एक अच्छा आगाज है।

***

प्रांतीय छात्र सम्मान समारोह ने छोड़ा गहरा प्रभाव

तर्कशील सोसाइटी पंजाब ने 23 नवंबर को बरनाला स्थित तर्कशील भवन में राज्य स्तरीय, सातवीं छात्र चेतना परीक्षा 2025 के संबंध में छात्र पुरस्कार समारोह का आयोजन किया। इस शानदार समारोह में पंजाब भर से चेतना परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले छात्रों को सम्मानित किया गया । यह चेतना परीक्षा गदर आंदोलन की महान नायिका बीबी गुलाब कौर की महान शहीदी की शताब्दी को समर्पित थी।

प्रसिद्ध पंजाबी लेखक गुरमीत कड़ियालवी इस पुरस्कार समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित हुए। मुख्य अतिथि के इलावा, इस समारोह में कनाडा की तर्कशील सोसाइटी के अध्यक्ष बलदेव रहपा, तर्कशील यूनिट लीसेस्टर (इंग्लैंड) के नेता मक्खन सिंह लीसेस्टर, सोसाइटी के प्रांतीय नेता राजिंदर भादौड़, हेम राज स्टैनो और पंजाबी 'तर्कशील' पत्रिका के संपादक राजपाल बठिंडा शामिल थे। इस समारोह में बड़ी संख्या में तर्कशील नेता, कार्यकर्त्ता, छात्र, उनके अध्यापक व अभिवावक शामिल हुए कार्यक्रम का प्रारम्भ छात्रों द्वारा प्रस्तुत क्रांतिकारी गीतों और कविताओं से हुआ।

पहले सत्र में, चेतना परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों ने चेतना परीक्षा के पाठ्यक्रम की पुस्तकों में दिए गए वैज्ञानिक पाठ्यक्रम से प्राप्त ज्ञान और चेतना के बारे में अपने विचार साझा किए।

कार्यक्रम के मुख्य वक्ता गुरमीत कड़ियालवी ने अपने संबोधन में विद्यार्थियों के लिए जीवन में वैज्ञानिक चिंतन अपनाने और गुणवत्तापूर्ण साहित्य से जुड़ने की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने विद्यार्थी चेतना परीक्षा में बड़ी संख्या में छात्राओं की भागीदारी पर प्रसन्नता व्यक्त की। उन्होंने शिक्षा पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक चेतना और संघर्ष की भावना विकसित करने के बजाय काल्पनिक और रूढ़िवादी पाठ्यक्रम को शामिल करने के शासक वर्ग के प्रयास को एक खतरनाक प्रवृत्ति बताया। उन्होंने कहा कि पिछले चार दशकों से वैज्ञानिक चेतना को बढ़ावा देने के लिए सोसाइटी द्वारा किया जा रहा कार्य अनुकरणीय है। इससे पहले, तर्कशील पत्रिका के संपादक राजपाल बठिंडा ने मुख्य वक्ता और अतिथि गुरमीत कड़ियालवी और उनके साहित्यिक योगदान का परिचय दिया।

कार्यक्रम के अंतिम सत्र में, कक्षा 6 से 13 तक राज्य स्तर पर शीर्ष स्थान प्राप्त करने वाले 30 छात्रों को नकद पुरस्कार, तर्कशील पुस्तकें, स्मृति चिन्ह और प्रमाण पत्र देकर सम्मानित किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि गुरमीत कड़ियालवी को राज्य समिति द्वारा तर्कशील पुस्तकों का एक सेट भेंट किया गया। इस अवसर पर, रैशनेलिस्ट सोसाइटी कनाडा के अध्यक्ष बलदेव रहपा ने अपने संबोधन में सोसाइटी के प्रतिभाशाली छात्रों द्वारा दिखाए गए उत्साह की खूब सराहना की। इस अवसर पर, रैशनेलिस्ट यूनिट लीसेस्टर (इंग्लैंड) के प्रमुख मक्खन सिंह लीसेस्टर ने इस वर्ष की चेतना परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले प्रतिभाशाली छात्रों को 45,000 रुपये की पुरस्कार राशि प्रदान की। उन्होंने चेतना परीक्षा के लिए प्रतिवर्ष यह पुरस्कार राशि प्रदान करने का वचन भी दिया।

विद्यार्थी चेतना परीक्षा में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने वाली 22 इकाइयों को भी सम्मानित किया गया।

समारोह में राज्य संगठन के प्रमुख मास्टर राजिंदर भादौड़ ने पिछले सात वर्षों से आयोजित हो रही विद्यार्थी चेतना परीक्षा के उद्देश्य के बारे में विस्तार से प्रकाश डाला। उन्होंने इस समारोह के प्रथम सत्र में विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत किए गए विचारों को चेतना परीक्षा की उपलब्धि बताया। उन्होंने चेतना परीक्षा के मेधावी विद्यार्थियों को नकद राशि देने का दायित्व उठाने वाले तर्कशील नेता मक्खन सिंह लीसेस्टर (इंग्लैंड) के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि परीक्षा की सफलता में सहयोग करने वाले प्रधानाचार्यों, शिक्षकों, तर्कशील कार्यकर्ताओं और भाग लेने वाले विद्यार्थियों के इलावा, इस आयोजन से जुड़े सभी लोगों को हार्दिक बधाई दी।

छात्र जागरूकता परीक्षा विभाग के प्रमुख गुरप्रीत शाहना ने मंच सचिव की जिम्मेदारी बखूबी निभाई।

रिपोर्ट- सुमित अमृतसर
(प्रांतीय मीडिया प्रमुख)
7696030173

प्रेरणा, सबक और संकल्प



कृष्ण बरगाड़ी तर्कशील आंदोलन के दिवंगत नायक हैं, जिनका जीवन और कार्य समाज में ज्ञान-विज्ञान का प्रकाश फैलाने की आकांक्षा रखने वालों के लिए प्रेरणा का स्रोत है। आंदोलन से जुड़े रहने के दौरान उन्होंने दृढ़ संकल्प के साथ अपने कदम आगे बढ़ाए। उन्होंने नए रास्ते खोजे। उन्होंने स्वार्थ को त्यागकर आंदोलन को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। वे अंधविश्वास और अज्ञानता के अंधकार को परास्त करने के लिए मशाल की तरह रौशनी फैलाते रहे। वे वैज्ञानिक चिंतन को जनमानस तक पहुंचाने के लिए तर्कशील कारवां के नेता बने। उन्होंने रास्ते में आने वाली कठिनाइयों का दृढ़ निश्चय से सामना किया। उन्होंने अपने कार्यों से यह सिद्ध किया कि मिशन और संगठन के लिए ईमानदारी से काम करने से समूह का हित सर्वोपरि होता है।

उन्होंने कैंसर जैसी बीमारी से बहादुरी से लड़ाई लड़ी और अपनी मृत्यु के समय भी मानवता को एक सबक सिखाया। ज़िंदिगी के सफर के अंत के बाद भी वे मानवता के प्रति वफादार रहे। उनके परिवार ने उनके शरीर को चिकित्सा अनुसंधान के लिए प्रदान करने के निर्णय का समर्थन किया। कृष्णा बरगाड़ी उत्तर भारत के पहले शरीर प्रदानी बने।

उनकी स्मृति हमारे मनों में हमेशा अंकित है। यही आगे बढ़ते रहने की शक्ति है। यही तर्कशील आंदोलन के कार्यकर्ताओं के कदमों का उत्साह है। यही अंधविश्वासों के अंधकार को परास्त करने की प्रेरणा है।

अपने दिवंगत नायक को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए और उनके बलिदान को सलाम करते हुए, उनकी 24वीं पुण्यतिथि पर, हम उनके मार्ग का ईमानदारी से अनुसरण करने का संकल्प लेते हैं।

24वां कृष्णा बरगाड़ी मेमोरियल प्रांतीय सम्मेलन फरवरी 2026 के तीसरे सप्ताह में तर्कशील भवन, बरनाला में आयोजित किया जाएगा।

भारत में पोस्टमार्टम की शुरुआत



प्रोफेसर मधुसूदन गुप्ता भारतीय चिकित्सा विज्ञान के इतिहास में एक अत्यंत महत्वपूर्ण व्यक्तित्व माने जाते हैं। उन्होंने भारत में पहली बार मृतक देह की चीरफाड़ (पोस्टमार्टम/डिसेक्शन) करके चिकित्सा शिक्षा और वैज्ञानिक सोच को नई दिशा दी। यह कार्य 19वीं शताब्दी में उस समय किया गया, जब समाज में धार्मिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों के कारण मृत शरीर को छूना भी पाप माना जाता था।

मधुसूदन गुप्ता का जन्म 1800 ई. में बंगाल में हुआ था। वे संस्कृत, आयुर्वेद और पश्चिमी चिकित्सा विज्ञान-तीनों के विद्वान थे। वे कलकत्ता मेडिकल कॉलेज से जुड़े थे, जो उस समय भारत में आधुनिक चिकित्सा शिक्षा का प्रमुख केंद्र था। 10 जनवरी 1836 ई. में उन्होंने पहली बार सार्वजनिक रूप से एक मृत मानव शरीर की चीरफाड़ की। यह घटना भारतीय चिकित्सा इतिहास में एक क्रांतिकारी कदम सिद्ध हुई।

उस समय समाज में यह धारणा प्रचलित थी कि मृत शरीर की चीरफाड़ करने से धर्म भ्रष्ट हो जाता है। ऐसे वातावरण में मधुसूदन गुप्ता का यह साहसिक कार्य न केवल वैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था, बल्कि सामाजिक सुधार की दृष्टि से भी ऐतिहासिक था। उन्होंने यह सिद्ध किया कि मानव शरीर की संरचना को समझने के लिए प्रत्यक्ष अध्ययन आवश्यक है और इसके बिना चिकित्सा विज्ञान अधूरा है।

उनके इस प्रयास से भारत में आधुनिक शरीर रचना विज्ञान (एनाटॉमी) के अध्ययन की नींव पड़ी। इससे चिकित्सा छात्रों को व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होने लगा और भारतीय चिकित्सा शिक्षा में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा मिला। मधुसूदन गुप्ता का यह योगदान अंधविश्वास के विरुद्ध तर्क और विज्ञान की जीत का प्रतीक है। उनका कार्य आज भी वैज्ञानिक चेतना, साहस और प्रगतिशील सोच की प्रेरणा देता है।

जनवरी-फरवरी 2026 Reg. No. HARHIN/2014/60580 वर्ष 13 अंक 1

सातवीं छात्र जागरूकता परीक्षा 2025 के 23 नवंबर 2025 को आयोजित राज्य छात्र सम्मान समारोह का दृश्य





छात्र सम्मान समारोह को संबोधित करते हुए मुख्य अतिथि गुरमीत कड़ियालवी।



पुंडरी (हरियाणा) में करवाए
तर्कशील नाटक मेले का दृश्य



मेले में उपस्थित जन समुदाय

If undelivered please return to :

Tarksheel

**Tarksheel Bhawan, Tarksheel Chowk,
Sanghera By Pass, BARNALA-148101
Post Box No. 55**

Cell. 98769 53561, 98728 74620
Web : www.tarksheel.org
e-mail : tarkshiloffice@gmail.com

BOOK POST
(Printed Matter)

To ....

....

....